



अर्पण कुमार

जन्म : 14 फरवरी, 1977

#### शिक्षा

- एम.ए. (हिंदी), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- अंग्रेज़ी हिंदी अनुवाद में स्नातकोत्तर डिप्लोमा, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- हिंदी पत्रकारिता में स्नातकोत्तर डिप्लोमा, भारतीय जनसंचार संस्थान, नई दिल्ली
- एम.ए. (जनसंचार), गुरु जंबेश्वर विश्वविद्यालय, हिसार

#### लेखन/प्रसारण/पुरस्कार

- कविताएं जनसत्ता, अमर उजाला, दैनिक भास्कर, पॉयनिर साप्ताहिक, कुबेर टाइम्स, समकालीन भारतीय साहित्य, वागर्थ, बहुवचन, नई धारा, कथादेश, मधुमती, गगनांचल, इंद्रप्रस्थ भारती, कादम्बिनी आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित व ऑल इंडिया रेडियो, नई दिल्ली से प्रसारित
- विविध विषयों पर भारत के सभी प्रमुख हिंदी अखबारों में लेख, फीचर, इंटरव्यू आदि प्रकाशित
- दूरदर्शन के मेट्रो चैनल के लिए पटकथा-लेखन
- हिंदी अकादमी, दिल्ली से पुरस्कृत

#### संप्रति

प्रबंधक (राजभाषा), स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एण्ड जयपुर अंचल कार्यालय, जयपुर

#### संपर्क

एसबीबीजे अधिकारी आवास  
बी-1/6, ज्योति नगर, जयपुर-302005  
ई-मेल : arpankumarr@gmail.com

ISBN : 978-93-81596-57-9

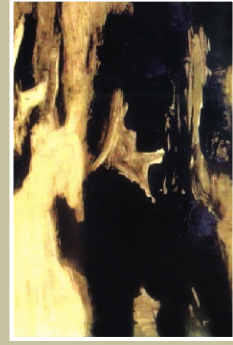


मूल्य : 75.00

ISBN : 978-93-81596-57-9

बोधि जन संस्करण

आवरण चित्र : विजेन्द्र



आवरण के चित्रकार : विजेन्द्र

देश के सुप्रसिद्ध कवि। राजस्थान साहित्य अकादमी के सर्वोच्च मीरा पुरस्कार, विशिष्ट साहित्यकार सम्मान, प्रथम पहल सम्मान एवं के.के. बिड़ला फाउंडेशन के बिहारी पुरस्कार से सम्मानित। सामाजिक सरोकारों से युक्त चित्रकला में गहरी रुचि। सम्पर्क : सी-133, वैशाली नगर, जयपुर-21

मैं सड़क हूँ

अर्पण कुमार



मैं सड़क हूँ

अर्पण कुमार



धूप से चलके आई आँखें  
चुँधियाती हैं  
कमरे में घुसते हुए

वक्त लगता है  
खुली दुनिया को  
चारदीवारी तक सिमटने में

# मैं सड़क हूँ

(कविता-संग्रह)

अर्पण कुमार



मैं सड़क हूँ : अर्पण कुमार  
बोधि प्रकाशन

पूजा

प्रथम संस्करण : 2011

ISBN : 978-93-81596-57-9

कम्प्यूटर ग्राफिक्स : बनवारी कुमावत 'राज'

आवरण संयोजन : तरु टीम

बोधि प्रकाशन, जयपुर के लिए तरु ऑफसेट, जयपुर से मुद्रित एवं कार्यालय बोधि प्रकाशन, एफ-77  
सेक्टर 9, रोड नं. 11, करतारपुरा इंडस्ट्रियल एरिया, बाईस गोदाम, जयपुर-302006से प्रकाशित।

दूरभाष : 0141-2503989, 98290-18087 ₹ 75/-

जो आज मुझे नहीं समझती  
या यूँ कहना ज्यादा न्यायपूर्ण होगा  
कि जिसे मैं कभी ठीक-ठीक समझ  
नहीं पाया  
उसी माँ को  
जिसकी कोख ने अस्तित्व दिया  
और जिसकी ममता ने  
मुझे खड़ा किया

## अनुक्रम

स्वीकार	7
समंदर का कहर	10
गुमान था...	13
महानगर में एक कस्बाई लड़की	15
स्त्री-नदी	16
हाशिया	26
आश्वस्त पिता	28
बुजुर्ग दिल्ली आए हैं	30
वृद्ध की डायरी में	37
उपयोगितावाद की महिमा	41
स्वागत-गीत	43
उपन्यास बनती आँखें	45
प्रतियोगिता	47
सुनना	49
मजिस्टर राम का शरणार्थी	52
आजकल मैं पटना जंक्शन पर नहीं उतर रहा हूँ	62
अँधेरा	66
अकेला होता आदमी	70
तीन पीढ़ियों के बीच चौथी पीढ़ी	72
परदे से झाँकता डर	77
सभी तुम हो	81
मेरा देवता	83
चाकू की नोक पर एक सवाल	87

कुआँ	90
खूँटी	93
चाकू	95
बाज़ार	97
शहर में कवि	100
धूप	104
स्त्री-द्वैत	106
अँगूठी बना चेहरा	110
रोटी खाने का हक़	113
मैं सड़क हूँ	118

## स्वीकार

तुम स्वीकार करोगे साथी  
मुझे भी  
जैसे स्वीकार करती है रेत  
अपनी छाती पर चहलकदमी करते  
अजनबी, आवारा पैरों को  
सहज, उन्मुक्त भाव से  
और उन्हें अंकित होने देती है  
स्वयं में कहीं गहरे तक  
तभी उकेर पाता है कोई पथिक  
अपनी आहट, निरुद्देश्यता  
और अपनी विकलता को भी,  
अपनी उदारता और नम्रता के सहारे  
रेत बिछ जाती है  
किसी कोरे स्लेट सा  
लकीरों को उनका भरपूर फैलाव देने के लिए  
तब रेत और उस पर भटकते प्राणी के बीच  
अस्थायी ही सही मगर  
एक रिश्ता कायम हो जाता है  
भरोसा है मुझे भी  
ऐसा ही कोई रिश्ता खिल उठेगा  
मेरे-तुम्हारे बीच अकड़ आई इस सूखी डंटल पर  
जब हम थोड़ी कोशिश करेंगे

अपने अंदर की पीली पड़ती हरियाली को  
बाहर पसरने देने की  
बस कुछ दिनों की बात है  
तुम मेरे चेहरे से, चेहरे की खामोशी से  
मेरी बातों से, बातों के खुरदरेपन से  
मेरे कहने की वक्रता और उसके उतार-चढ़ाव से  
पहले अवगत हो जाओ जरा  
और तुम्हें मेरा यह प्रकट अलगाव बहुत अजीब  
और पराया न लगे  
कहीं किसी कोण से और  
मैं तुम्हें तुम्हारी जात की ही लगूँ

जब तुम यह जान जाओगे कि  
मैं भी तुम्हीं में से एक हूँ  
और जो मैं कह रहा हूँ  
वह कहीं से भी  
तुम्हारे अहित में नहीं है  
और तुम्हारी स्वयं की बातों से  
उनका कुछ विरोध भी नहीं है  
तब देखना  
तुम स्वीकार करोगे मुझे  
और संभव है कि तब मैं तुम्हें अतिरिक्त रूप से  
अच्छा लगने लगूँ  
हालाँकि मैं तब भी वही रहूँगा  
जो पहले था  
जब तुम मुझे नापसंद कर रहे थे  
हो सकता है कि तब मैं तुम्हें कुछ  
विशेष प्रीतिकर लगने लगूँ  
वह इसलिए कि अपने प्रति

तुम्हारी लाख हिकारत के बावजूद  
मैंने तुम्हें नापसंद नहीं किया कभी  
और यह तुम्हारे लिए एक नई बात थी  
क्योंकि तुम्हें अब तक नफरत के बदले  
नफरत का फलसफा ही समझाया गया था  
संभव है तुम थोड़ा चौंको  
मगर तुम भी धीरे-धीरे इस धारणा के अभ्यस्त हो जाओगे  
कि कोई जरूरी नहीं है कि हम वही लौटाएं  
सामने वाले को जो वह हमें दे  
क्योंकि कुछ भी हों हम  
इतने सपाट और चमकीले  
खैर बिल्कुल नहीं हो सकते कि  
हम एकदम से परावर्तित कर दें  
खुद तक पहुँची अच्छी-बुरी किसी किरण को  
यांत्रिक भाव से  
और रहकर विज्ञानसम्मत

कुछ भी हो  
हैं तो आखिर हम इंसान ही  
किसी सूत्र, सिद्धांत से बँधकर  
और अक्सरहाँ उनके बाहर ।

## समंदर का कहर

हमारी ही जीविका का आधार  
समंदर,  
हमारी ही जान  
इतने थोक-भाव से लेगा  
यह अंदाज़ लगा पाते,  
समंदर की छाती पर  
तैरने वाले मछुआरे  
उसकी गोद में समाहित हो गए ।

हम तुम्हारी जल-क्रीड़ा को  
देखने आए थे  
और तुम हमारी जीवन लीला  
के पीछे पड़ गए  
पर्यटक सोचते  
स्याह दिन  
काफी निकल आया था ।

क्रिसमस की रात  
मौज-मस्ती करते  
नए वर्ष के स्वागत के  
नए-नए तरीके ढूँढ़ते  
जो देर से सोए थे

उनकी खुमारी उतरती  
वे सदा के लिए  
सो गए;  
किसी परमाणु बम के विस्फोट के  
प्रभाव से लाख गुना  
अधिक भयानकता रखने वाले  
इस समुद्री तूफान की  
दैत्याकार शक्ति  
सिहराती है उन्हें भी  
जिन्होंने कभी समंदर नहीं देखा  
अपने समग्र जीवन में;  
प्रकृति की सुन्दरता  
प्रकृति का खंजर  
बन जाती है  
हम सोचते हैं  
और अपनी समस्त जिद एवं  
भौचक्केपन के साथ  
अपनी बर्बादी को  
अपनी आत्मदीनता में  
स्वीकारते हैं

दुनिया का भूगोल  
बदल जाता है  
बदल जाती है  
तक्रदीर दुनिया की  
दुनिया जो हम रचते हैं  
बड़े अरमान से  
जुड़कर अपने परिश्रम की बूँदों से  
और खोकर

अपना चैन और मूल्य भी  
सब ध्वस्त हो जाता है  
कुछ पलों में

प्राकृतिक कोप का कहर  
भारी पड़ता है  
हमारे वस्तु संग्रह की  
आदिम प्रवृत्ति पर।

## गुमान था...

गुमान था  
ग़लत निर्णय नहीं लूँगा  
कभी अपने जीवन में...  
हक़ीकत है कि  
ज़िंदगी की चौसर में  
बिछे बिसात पर  
मैंने हर बार  
ग़लत गोटियाँ ही खेली

गुमान था  
जिसको स्पर्श करूँगा  
सोना बना दूँगा  
ज्यों होऊँ कोई पारस...  
हक़ीकत है कि  
जीवन के किसी घाट पर  
पड़ा हूँ अलक्षित स्वयं ही  
राह में इधर-उधर  
टुकराए जाते किसी  
मामूली पत्थर-सा

गुमान था कि  
विश्व-विजय करूँगा

सिकंदर की भांति  
और नाप लूँगा  
समस्त लोकों को  
अपने तीन पगों में  
किसी वामन-सा...  
हक़ीकत है कि  
जोड़ नहीं पा रहा हूँ  
अपने ही वजूद के  
बिखरे हिस्सों को  
जाने कितने जन्मों से

गुमान था  
कितना कुछ कर गुजरूँगा  
इस जीवन में...  
हक़ीकत है  
कितना कुछ रह जाएगा  
करने को  
इस जीवन में ।



## महानगर में एक कस्बाई लड़की

वह मजबूत हुई/बैसाखी छोड़ दी है उसने  
आना-जाना बढ़ गया है/अकेले उसका  
आत्मविश्वास मुखर हो चला है अब  
आत्मसंशय से मुक्त हो रही है वह  
तेज दौड़ती सड़कों ने/बढ़ा दी आखिर  
उसकी भी गति  
उसके कपड़े/अब श्वेत नहीं दीखते/हरदम  
नहीं लगाती निरर्थक समय  
खुद को लीपने-पोतने में  
बातचीत का कौमार्य भी/जाता रहा  
धूल भी दीख जाती है/चिबुक और पलकों पर  
स्थापित होने की चिंता/सता रही है उसको भी  
लक्ष्मण-रेखा के पार/निकल पड़ी है वह  
अपने बड़े-से-जूड़े को कस/असीमित आकाश को  
अपने आँचल में समेटने  
संभावित किसी दशानन के  
दुःसाहसों से निबटने की/तैयारी के साथ ।  
यह विकसन-पर्व है/मुबारक हो  
सहमी, सशक्त रहने वाली  
उस कस्बाई लड़की को ।

## स्त्री-नदी

### एक

जटिल नहीं है  
नदी की  
चक्करदार, बिछलती  
देह,  
जटिल है  
उसकी गोपन भाषा

मुश्किल नहीं है  
नदी की  
केशराशि फैलाना  
मुश्किल है  
अपनी अधीर उंगलियों से  
उसकी वेणी बनाना  
धैर्यपूर्वक

पुरुषार्थ नहीं है  
नदी को हासिल करना  
पुरुषार्थ है  
नदी के साथ बहना  
संभालते हुए उसे  
ऊबड़-खाबड़ पथ पर

होकर आत्मसंयत स्वयं भी  
ज़रूरी नहीं है  
नदी को चाँद कहना  
ज़रूरी है  
नदी में चाँद की  
तरह उतरना  
गहरे, अनछुए  
लिप्सारहित,  
नहाते हुए  
उसके जल को  
अपनी रोशनी में

भ्रम नहीं है  
नदी का दर्पण होना  
भ्रम है  
उसमें बेमानी  
अपना कोई प्रतिबिंब देखना  
जिद में और बहुधा  
झूठी शान में

दुष्कर नहीं है  
नदी को समझना  
दुष्कर है  
उसे विश्वास में लेना ।

## दो

न मिले नदी का समर्पण  
मगर मिल जाए  
नदी का साहचर्य

काफी है इतना  
मेरे पथिक को

ज़रूरी नहीं कि  
नदी मुझे बहाए  
अपने संग,  
मैं फक़त यह चाहता हूँ  
कि वह अपने निविड़ एकांत में  
सुनसान पथों पर  
सिर्फ मुझे सोचे  
और बहती हुई अपनी गति से  
थम जाए उतनी देर  
मेरी याद में,  
अपने चरम उफान में  
अपनी प्रकृति से परे

नदी में घुस पड़ना  
यूँ ही बेमतलब  
समय-कुसमय  
निरे अयाचित, अमर्यादित ढंग से  
नहीं है कोई हासिल  
मेरी राय में  
किसी पुरुष का  
बेहतर है  
बूँद-बूँद जी सकूँ मैं नदी का  
अपनी प्रवहमान आत्म-चेतना में  
उसकी जल-राशि को  
अपने तई गंदला किए बग़ैर  
उसके तटों पर चहलकदमी करता  
शांत और निरावेग मन से

और एक जीती-जागती नदी  
उतर आए मेरे अंदर  
अपनी समस्त ऊर्जा और  
क्षिप्रता के साथ  
पूरे हक से  
अपनी शुचिता और गरिमा को  
खंडित किए बिना  
कहीं किसी कोण से;  
आखिर यह भी तो  
उपलब्धि ही है  
प्रेम की  
कदाचित् कुछ अधिक तरल  
सुवासित और कल्पित  
अपनी अतृप्त हूक में भी

नहीं चाहिए मुझे  
नदी का प्रकट, इकहरा और  
बेमानी समर्पण  
हाँ अगर किसी भाँति योग्य  
ठहरता हूँ और नदी उचित समझे  
तो मिल जाए मुझे  
उसकी गोपन, इंद्रधनुषी और  
उत्सुक परिव्याप्ति ही

बेशक  
नदी मेरी ओर न बहे  
मगर रहे  
मेरे आस-पास  
काफी है यह भी  
मेरी चिर और मानिनी  
तृष्णा के निमित्त ।

## तीन

नदी मूक  
निश्चेष्ट और  
अप्राप्य रही

इस तरह  
हासिल के बाहर  
नदी हासिल हुई ।

## चार

नदी की उदासी  
मुझे परेशान करती है

नदी का प्रवाह  
मुझे ऊर्जा देता है

नदी का हर रूप  
हर अंश  
देता है  
कुछ-न-कुछ  
मिलकर  
रिक्त हाथ कभी  
नहीं जाने देती नदी ।

## पाँच

नदी मुझे बहा नहीं रही  
जानता हूँ मैं  
मैं नदी की धारा नहीं

मोड़ रहा  
जानती है नदी  
मगर बह रहे हैं दोनों  
साथ-साथ, स्वतः स्फूर्त  
किसी बल-प्रयोग के  
दंभ से मुक्त  
किसी समीकरण से अनजान  
और परे किसी कुंठा से।

### छह

नदी का शब्द-सागर अपार  
या मेरी अभिव्यक्ति अनिवार  
कौन जीतेगा आखिरकार !

### सात

मैं साँस लेता हूँ  
शहर के इस छोर पर  
नदी में लहर बनती है  
शहर के उस छोर पर

रात्रि के अर्धपहर में  
जब पूरा शहर  
गहरी नींद में है  
एक छोर से दूसरे छोर तक  
दो जागती, सिहरती उपस्थितियों के बीच  
यह कैसी आवाजाही है  
जो शहर को चीर रही है  
अपनी खामोश उद्दामता में।

### आठ

नदी  
अनजान नहीं थी  
मेरे दर्द की  
टीस से

फिर  
मैं अधीर  
हुआ क्योंकि  
नदी के तट पर  
अपनी  
निःशब्दता खोकर।

### नौ

मैं  
बिखर रहा था  
काँच के किरचों सा  
और  
नदी  
नहीं आ रही थी  
समेटने  
टुकड़ों के  
इस ढेर को  
किसी चीख, टूटन से  
विचलित हुए बगैर  
नदी  
बह रही थी  
अपनी प्राकृतिक गति में

घुलाए अपने विस्तार में  
जीवन के मर्म को  
और  
संबोधित करती कहीं  
मुझे भी  
किसी उलझन, भटकाव से  
निकल बाहर आने को  
अपनी सहज, क्रियाशील द्रुतमयता में।

### दस

मेरा एक हिस्सा  
जाता है जो अक्सर  
नदी के तट पर  
वह मेरी उम्र से  
बढ़कर  
पुरातन है  
और उसका अतीत  
नदी की परम्परा के  
बराबर टिकता है।

### ग्यारह

नदी  
इंतज़ार करती थी  
अपनी सहचरी का  
नदी  
हुलसती थी  
मुझे देखकर  
अपने इंतज़ार में।

### बारह

दुनिया का सारा संगीत  
नदी के गर्जनयुक्त बहाव में है  
प्रकृति का समस्त सौंदर्य  
नदी की तरल वक्रता में है  
सृष्टि की सारी  
जानी-अनजानी  
भाषाओं को  
सँवार/रच रही है नदी  
अपने क्रोड़ में

नदी के होने में  
संगीत, सौंदर्य  
और भाषा का होना है।

### तेरह

गौर से सुनो  
अँधेरी रात के  
गहराते, खामोश पलों को  
जिसको चीरती चली आ रही है  
पानी की गड़गड़ाहट  
कहीं किसी बहती नदी की  
आर्त वेदना का वहन करती  
दूर से ही  
तुम्हारे कानों तक  
और तुम्हें अच्छी तरह पता है  
इस अनाहूत, अनवरत रुदन के पीछे  
दम साधे किसकी आत्माहुति है  
और यह किसका हृदयविदारक विलाप है

मगर तुम निस्पंद बैठे हो  
बहरे होने का ढोंग करके  
अपने पुरुषोचित ठसक और पूर्वाग्रह को  
अपने कंधों पर लादे  
घोर बेशर्मी और निष्ठुरता में

मंद-मंद बहती नदी  
स्वयं में सिमटती  
जाने कितने युगों से  
डूबती-उतराती रही है  
अपने ही आँसुओं के  
सैलाब में  
अपना आत्मोत्सर्ग करती  
तुम्हारी खातिर  
जिसका तुम्हारी नज़रों में कोई मोल नहीं  
हे पुरुष !  
सोचो,  
अगर एक नदी यूँ अश्रुपूरित है  
तो इतिहास और परंपरा की  
किन कठोरतम दुर्वृत्तियों ने  
अन्यथा एक सहज, प्रवहमान नदी को  
यूँ ज़ार-ज़ार रुलाया होगा  
सोचो, नदी की शीतलता और मिठास लेकर  
उसके देय को  
सिरे से खारिज कर देने  
और उसकी अवमानना करने के  
अपने पारंपरिक, रूढ़िजनित  
पुरुष-दंभ की अहंकारी अग्रिम पंक्ति में  
कहीं तुम भी तो  
खड़े नहीं हो !

## हाशिया

### एक

लेखक के दाएँ हाथ की उँगलियाँ  
किसी कलम को अपने केंद्र में  
दृढ़ता से पकड़े  
जब आगे बढ़ रही होती हैं  
दाईं दिशा में बेधड़क  
तब बाएँ हाथ का उसका अँगूठा  
और अक्सरहाँ दूसरी उँगलियाँ भी  
मुझे सहला, मना रही होती हैं  
मगर अपने हल्के नियंत्रण के  
दबाव में

मैं बतला सकता हूँ कि  
कहाँ क्या लिखते हुए  
वह रुका था, हिचका था  
और जो कहने के लिए बैठा था  
उसे छोड़कर  
किसी मजबूरी में या स्वभाववश  
या आकर किसी प्रलोभन में  
जाने क्या अनाप-शनाप  
लिखता रहा था

हाँ,  
तब मैंने उसकी बाईं हथेली को  
बहुत देर तक यूँ ही निस्पंद पड़ा  
महसूस किया था/अपने ऊपर  
किसी अनजाने क्षोभ में  
उसे अपना  
आधार भी दिया था तब  
यथा संभव

मैं हाशिया हूँ  
मगर उपेक्षित नहीं  
किसी लिखे हुए को  
सिर्फ पढ़ना हो यंत्रवत  
तो मेरी कोई ज़रूरत नहीं  
मगर किसी लेखक की  
छटपटाहट और उसके  
द्वंद्व को समझने की  
दरकार हो  
तो उसका रास्ता  
मुझसे होकर जाता है।

**दो**

मैं एक औदात्य  
और आत्मानुशासन हूँ  
किसी लेखक का  
जहाँ से  
वह अपना अहं  
विसर्जित करना  
सीखता है।

**आश्वस्त पिता**

अभी भी सहसा  
यक्रीन नहीं होता मुझे  
एकदम से  
कि एक दिन खो दूँगा मैं  
अपने पिता को  
जैसा कह रहा है  
शहर का सबसे मशहूर चिकित्सक  
क्या मेरा सबसे अजीज  
और विश्वसनीय दोस्त  
अपने जीवन के साठवें वसंत में  
यूँ काल-कवलित हो जाएगा असमय!

कैंसर है मेरे पिता को  
पित्ताशय में  
बढ़ रहा है जो क्रमशः  
यकृत की तरफ  
दो अंगों के बीच  
तेजी से बढ़ता/पसरता...  
सांघातिक ट्यूमर  
क्षीण कर रहा है  
पिता के शरीर को अनवरत  
उनकी जिजीविषा को रह-रह कर  
अपनी दुर्दम्य रफ्तार में  
उनकी पलकें

बंद रहने लगी हैं ज्यादातर इन दिनों  
फिर भी, जब-तब कसमसाकर  
आ जाता है बाहर  
अंदर का घना अंधकार  
उनके सिकुड़ते चेहरे और सिमटे बिस्तर पर;  
स्याह परत के नीचे  
कुछ और साधारण दिखता है  
पिता का अतिसाधरण चेहरा  
कुछ और घट जाता है  
पिता का छोटा क्रद  
इस अमंगलकारी कालिमा से  
पिता के कसे होंठ  
अपनी दृढ़ता में मगर  
अप्रभावित ही रहते हैं  
और इस असहायता की  
घड़ी में भी  
अपनी शांत, निर्लिप्त, निश्चित  
आँखों से देखते हैं  
अपने चारों बेटों में प्रत्यारोपित  
अपने होठों की वही कसावट  
और उन पर जमी कोई  
शाश्वत धीरता

पिता आश्वस्त हो  
मुँद लेते हैं अपनी पलकें  
इस विश्वास के साथ  
कि सँभाल लेंगे  
उनके चारों बेटे  
अपने आप को  
और अपनी माँ को भी  
उनके पीछे।

## बुजुर्ग दिल्ली आए हैं

बुजुर्ग आजकल  
हमारे साथ हैं  
दिल्ली में  
और जब-तब  
सुनाते रहते हैं हमें  
अपने कौशल और साहस  
के किस्से  
चाव से, उत्साह में  
भरपूर आत्म-विश्वास से  
बुजुर्ग  
सिखलाते हैं हमें सोदाहरण  
बचत करने के गुर  
और इस बहाने  
जाकर झाँक आते हैं  
नई-पुरानी सुरंगों में  
अपने ही जीवन की  
मसलन, तीन वर्षों से  
रखे आ रहे हैं वे  
अपनी छतरी को  
उसके प्लास्टिक के कवर में ही  
और वह छतरी  
आज भी वैसी ही है



जैसी तीन साल पहले थी ।  
बुजुर्ग दाढ़ी बनाते हैं  
तल्लीन होकर आज भी  
मगर बुध और शुक्र को ही  
और देखते हैं वे  
अपना चेहरा,  
जिस आईने में,  
उखाड़ते नहीं भरसक  
उस पर लगा स्टीकर  
बुजुर्ग सहेजते हैं  
अपने सामान को  
जैसे सहेजते हैं खुद को  
अस्सी की उम्र में;  
बुजुर्ग कह डालते हैं  
जीवन और  
समाज की सच्चाइयों के सार  
एकदम थोड़े में  
किसी मंत्र-सिद्ध से

बाढ़ से बचते हुए किसी तरह  
आए हैं वे दिल्ली तक  
सुदूर मधेपुरा से,

जान-माल, खेत-खलिहान  
पुल, सड़क और बाँध  
माँ से बच्चे, बच्चों से आँचल  
बूढ़ों से सहारा, परिवार से साया  
गाँव के गाँव, शहरों के कई ठाँव  
जाने क्या-क्या तोड़कर  
बहाकर अपने साथ

बाढ़ का पानी  
उतरने लगा है अब  
उनके शहर से,  
अकथ पीड़ा से भरे  
सँभालते अपने-आप को किसी तरह  
सहसा फूट पड़ते हैं वे  
अपने दार्शनिक  
मुहावरेदार अंदाज़ में  
'मैं जानता था, ऐसा ही होगा  
जो बढ़ता है वो घटता है  
मगर बहुत कुछ लील गया  
इस बार का बाढ़ ।'

कई पोटलियाँ हैं  
बुजुर्ग के पास  
कोई दवाइयों की  
तो कोई पौष्टिक पेय पदार्थों की  
कभी-कभी रात में साँस लेने में  
दिवक्रत होने लगती हैं उन्हें आजकल  
तभी तो सोने से पहले हर रात  
बुजुर्ग स्प्रे लेते हैं  
अपनी नाक में

छत पर देर तक  
टहल नहीं पाते वे  
तेज चलती हवा से  
दुखने लगती है उनकी कमर  
तभी तो  
अपने कमरे में सोते हुए  
उठकर अपने बिस्तर से

रात में किसी भी समय  
वे तेज घूमते सीलिंग फैन की  
चाल को कम कर देते हैं  
या फिर  
उसे बंद ही कर देते हैं एकदम  
बुजुर्ग सो जाते हैं  
पहले और दूसरे पहर में  
रात्रि के  
और जाग उठते हैं  
ब्रह्ममुहूर्त में  
और रम जाते हैं  
ईश्वर की स्तुति में...  
अँधेरे में भी  
उनका कमरा  
जाग उठता है तब  
बुजुर्ग सोते हैं दोपहर में भी  
ज्यादातर एक करवट ही  
ओढ़कर छाती तक  
हलकी सूती चादर को  
सोए तो बुजुर्ग ही होते हैं  
बिस्तर पर  
मगर फैले होते हैं वहाँ  
किसी अधूरी कहानी के पन्ने  
कहानी,  
जो लिखी चली आ रही है  
अस्सी बरस से...  
इस बीच  
खोया है उन्होंने  
अपनी पत्नी को

और दूर हैं अपने बच्चों से  
जो सही-सलामत और व्यस्त हैं  
अपने-अपने घरों में  
बुजुर्ग ने देखे हैं  
संबंधों के कई रंग  
और रू-बरू होते आए हैं  
लोगों के सच्चे-झूठे चेहरों से  
मगर आज भी  
शिकार हुए बगैर  
किसी मोहभंग के

रहते/जीते हैं  
संबंधों की दुनिया में ही  
और जीवन के सुख  
और उसकी सार्थकता को  
तलाशते हैं वे  
बच्चों को प्यार करते हुए भरपूर  
निःस्वार्थ भाव से  
उत्साह में, सद्भाव में  
और रफ्तार में भी कभी-कभी  
उनकी बूढ़ी आँखें  
आज भी देख लेती हैं  
बहुत बारीकी से  
बच्चों के व्यवहारों के पीछे  
छिपे निहितार्थ को  
और उनके शिथिल पैर  
बढ़ जाते हैं बाजार की तरफ  
पूरा करने  
बच्चों की उल्टी-सीधी जिदों को

डायरी लिखते चले आ रहे हैं वे  
1946 से अनवरत  
जिसमे दर्ज़ है  
एक-एक पैसे का हिसाब  
एक-एक खर्चे का विवरण  
बुजुर्ग मानते हैं ऐसा  
मगर यह संभव नहीं दिखता  
कि हर चीज  
शब्दबद्ध हो ही जाती होगी,  
उनकी डायरी में  
कि आयास-अनायास  
कई कड़वी सच्चाइयों को  
आने नहीं देते वे  
अपनी डायरी और  
अपने पलकों पर

‘लिखते हुए उनके हाथ  
काँपते क्यों हैं’  
बुजुर्ग पूछते हैं डॉक्टर से  
और डॉक्टर चुटकी लेता है,  
‘अब आप सिर्फ हस्ताक्षर करें  
अपने चैक-बुक पर  
और उस बैंक के  
रजिस्टर पर  
जहाँ आपका पेंशन आता है’  
बुजुर्ग हँसते हैं प्रत्युत्तर में  
और टाल देते हैं इस तरह  
स्वयं भी जान-बूझकर  
डॉक्टर के गहरे निहितार्थ को

गिरा दी है किसी शैतान बच्चे ने  
बुजुर्ग की घड़ी  
दो-तीन बार  
वही घड़ी  
जो बँधी चली आ रही थी  
उनकी कलाई पर  
1971 से लगातार  
और इस बीच  
नहीं भूले थे वे  
एक बार भी  
उसमें चाबी भरना  
मगर अब  
उस घड़ी के कंपासों का  
आपसी समायोजन  
असंतुलित हो चुका है  
बुजुर्ग खरीदना चाहते हैं  
एक नई घड़ी  
जो ठीक-ठीक दिखा सके उन्हें  
बदलते समय की रफ्तार को

बुजुर्ग सोच रहे हैं आजकल  
समय और घड़ी के आपसी रिश्ते पर  
और देख लेते हैं जब-तब  
अपनी कलाई की ओर  
जो थोड़ी अजीब दिखती है  
घड़ी के बगैर।

## वृद्ध की डायरी में

मेरा मृत्यु-बोध  
गहराया है इन दिनों  
सहम जाता हूँ  
अपनी श्लथ-त्वचा में  
स्पंदित होता  
जब-तब  
मगर खेलता हूँ खूब  
अपने पोते-पोतियों के साथ  
घर के आँगन में  
तो कभी  
घर की छत पर  
अपनी उखड़ी साँस को  
संभालता हुआ  
और अपनी पुरानी ऐनक को भी  
जिसके शीशे बचते-बचाते भी  
चटक चुके हैं कई बार

जाने क्या मिलता है  
बच्चों को  
मुझे तंग करके  
या फिर उनका बाल-मन  
कदाचित यह जानता हो कि

मुझे भी इंतजार रहता है  
चोरी छिपे ऐसे पलों का  
और इस तंग होने में ही  
आनन्दित और रोमांचित होती है  
मेरी वृद्ध काया,  
और मैं भी तो  
अपना 'डेंचर' निकालकर बाहर  
डराता हूँ उन्हें  
अपने पोपले मुँह की  
डरावनी भाव-भंगिमाओं से,  
बच्चे खूब मज़ा लेते हैं  
इस खेल में...  
अपने दूधिया दाँतों से हँसते  
बच्चों के लिए  
दाँतों के पूरे सेट का  
इस तरह हथेली पर आ जाना  
एक रोमांचकारी  
अनुभव सा होता है

खुश होता हूँ यह सोचकर कि  
मेरा बुढ़ापा और उसके  
उपयोगी उपकरण दोनों  
साधन बन गए हैं  
बाल-मनोरंजन के,  
धुँधली और मद्धिम ही सही  
बच्चों की हँसी और खिलखिलाहट  
देख-सुन  
मेरा बूढ़ा, थका, पराजित  
उदास मन भी

विजयघोष करता है  
जय-पराजय की  
भौतिक गहमागहमी को  
जीती इस दुनिया के आगे  
अपने अस्तित्व की सार्थकता पर  
अपनी देयता पर भी

घर में निरंतर  
अपनी उपेक्षा सहते हुए भी  
माफ़ कर देता हूँ मैं  
अपने बेटे और बहू को  
सिर्फ़ इस भावातिरेक में कि  
मेरे पोते-पोतियों की  
कोलाहलयुक्त किलकारी और शैतानी  
बचा लेगी मुझे  
अंत-अंत तक  
मुझ पर हावी होने की कोशिश करती  
आत्म-दीनता  
और अस्तित्वहीनता की  
पल-पल गहराती कालिमा से

मेरा मृत्यु-बोध  
गहराया है इन दिनों  
मगर जीवन-जगत के कुछ रंग  
आज भी हैं इतने गीले कि  
उनसे संपृक्त और आश्वस्त है  
मेरा मन-तन  
जो काल से  
बेशक कोई होड़ नहीं ले रहा

मगर जी रहा है  
अपनी सहजता और  
निर्भयता में भरपूर  
और साक्षात्कार कर रहा है  
दुनिया की नई पौध से  
अपने जीवन के  
उत्तरार्द्ध में  
किसी उज़बक सा  
कुछ अचकचाया सा ।

## उपयोगितावाद की महिमा

आँखें  
टपक रही हैं जिनसे  
स्नेह-सुधा तुम्हारे लिए  
पलक झपकते ही  
बुन देंगी अभेद्य  
कोई जाल  
कोई जाल, तुम्हारे चारों ओर  
चौंको मत  
ये व्यावहारिक लोग हैं  
तुम हुए मिसफिट  
अगर इनकी दुनिया में  
इशारों से ही  
उठा दिए जाओगे  
इनके बैठकखानों से  
और एक-दूसरे को  
देखती इनकी पुतलियाँ  
हँस देंगी  
तुम्हारी अयोग्यता पर  
तुम सिद्ध करना चाहोगे  
बार-बार  
अपनी सार्थकता,  
हालाँकि इनके बाज़ार में

कोई कबाड़ी भी  
तुम्हारा समुचित मूल्य  
नहीं आँक पाएगा  
और हटना पड़ेगा तुम्हें  
किसी उपयोग में  
न आने वाले  
मकान के उस कोने से भी  
जो सुरक्षित है  
पहले से हो  
जंग लगे लोहे और  
रद्दी अखबारों के लिए।

## स्वागत-गीत

आम पर आ चुकी है मँजरी  
घनी और सुवासित,  
कई पुराने होर्डिंग  
उतर चुके हैं  
सड़क के  
चिर-परिचित खंभों से  
और उनकी जगह  
दूसरे आकर्षक विज्ञापनों ने ले ली है,  
कुछ स्टॉफ भी  
बदल चुके हैं  
मेरी चार्टर्ड बस के  
ऑफिस जाता हूँ जिसमें,  
दुकानों की शेल्फ में  
खनकने लगे हैं  
ठंडे-ठंडे पेय बोतल  
किस्म-किस्म के  
लेबल पहनकर

एक चिड़िया  
जो दूर चली गयी थी  
जाड़े में  
सृजन की एक संभावना लेकर

नीड़-बसेरा करने  
रानी मधुमक्खी सी  
आ जायेगी  
अब वह भी  
ग्रीष्म के चढ़ते सूरज का तेज  
और नवजात शिशु के  
बिछलते स्पर्श की शुचिता लिए सगर्व  
जोड़ी भर अपनी अँखियों में  
मेरे पड़ोस में,  
पड़ोस को सुवासित, सुखकर पड़ोस बनाती  
पूर्ववत...।

## उपन्यास बनती आँखें

तुमने आव देखा न ताव  
पढ़ डाला  
एक वृहत् क्लासिक  
रोमानी उपन्यास  
एक साँस में  
एक बैठक में  
बिना किसी क्रमभंग के,  
दोपहर का खाना लेते हुए  
मुँह में तुम्हारे  
रोटी नहीं अनुच्छेदों के  
बड़े-बड़े कौर  
जा रहे थे  
और मैं देख रहा था  
तुम्हारी क्षुधातुर आँखों को...  
भली लग रही थीं वे  
इस हद तक कि कोई  
झपट लेना चाहे उन्हें  
किसी बाज की भाँति  
एकबारगी  
मगर पास जाते ही  
आहिस्ता से  
सूप बनाकर अपनी हथेली का

छुपाने का मन करे  
उन्हें दुनिया से

मूँगफली के सुडौल, कुरमुरे  
जोड़ी भर ये दाने  
ठंडे न पड़े अनंत तक...  
मैं छेड़ देता तुम्हें  
और तुम  
आँखें गड़ाये पुस्तक में  
तो कभी उठाकर मेरी ओर  
कहने लगती कोई कहानी  
किसी मायानगरी की  
जाने किस अध्याय से उठकर

मैं घबरा गया  
उतावली, दुर्निवार और थकी  
तुम्हारी आँखों में  
कई वरक उपन्यास के  
फड़फड़ा रहे थे  
और एक नई प्रेम-कहानी  
आकार ले रही थी  
पृथ्वी पर  
और एक नया प्लॉट  
रचा जा रहा था  
किसी दूसरी क्लासिक-कथा के लिए।



## प्रतियोगिता

घिसट रहा था पीछे  
जब मैं कईयों से  
सचमुच ही  
लुटे-पिटे चेहरे और  
आँखों में पीली रोशनी लिए  
हार नहीं मान रहे थे  
मेरे थके, धूल-धूसरित पैर  
तब भी  
और हाँ,  
झुक नहीं रही थी  
मेरी गर्दन  
घोषित विजेताओं के आगे  
आत्मसर्पण तो कभी  
आत्मदीनता की मुद्रा में  
मैं हाथ मिला रहा था उनसे  
अपनी स्वाभाविक निश्चिंतता में  
अविचलित उनके खोखले दर्प से  
किसी कालबद्ध/स्थानविशेष के  
प्रतियोगिता-परिणामों को  
अपना अगूँठा दिखाता/और भरोसा रखता स्वयं में  
किसी प्रमाणपत्र की अंकतालिका-मात्र से निरपेक्ष

बहुत हुआ तो  
किसी प्रतियोगिता का  
प्रक्रियात्मक, व्यवस्थागत  
और क्षणिक महत्व हो सकता है  
मगर नहीं है वह कोई  
अंतिम घोषणा  
किसी की क्षमता/अक्षमता के  
स्थायित्व को लेकर  
और न ही कोई अचूक और  
अंतिम फैसला  
जिसे चुनौती नहीं दे सके/बदल नहीं सके  
किसी पराजित/शोषित का  
उग्र, स्थायी संकल्प और  
अन्यथा नकारा घोषित  
हुँकारता उसका पुरुषार्थ

किसी विशेष उद्देश्य के निमित्त  
किसी तात्कालिक क्रम-निर्धारण की  
आवश्यकता हो सकती है प्रतियोगिता  
मगर नहीं और नहीं है  
वह स्वयं में कोई  
अंतिम उद्देश्य या  
कोई अमिट निर्णय  
जो लगा दे कोई ठप्पा  
किसी के सफल-असफल होने का  
किसी के सुखी-दुःखी रहने का।

## सुनना

सिर्फ स्वयं बोलते जाने की  
आत्म-केन्द्रित सनक से बचना है  
उत्सुक जोड़ी- भर कान  
दुनिया-भर की अच्छी-बुरी कहानियों का प्रवेश-द्वार हैं  
अपनी-अपनी हेकड़ी में जीते और  
अनथक रूप से अपना महिमामंडन करते लोगों के  
आत्म-गर्व में तनी-दबी गर्दनों के बीच  
किसी का अधनत गर्दन लिए, विनीत भाव से कुछ सुनना  
उसकी कोई कमजोरी नहीं है;  
यह भी नहीं कि उसके पास कुछ कहने को नहीं है;  
कहना जरूरी हो तो कहा जा सकता है कि  
वह अनजाने ही  
इस वाचाल समय का एक विनयशील विकल्प है  
उसका मूक प्रतिरोध भी  
उसे एक ऐसा श्रोता भी कहा जा सकता है कि  
जिसके लिए किसी दूसरे को सुनना  
अपना सुनाने से कम महत्वपूर्ण नहीं है  
उसे अपनी बारी का इंतजार करना आता है  
अपने अंदर का सबकुछ एकबारगी उगल देने की  
उसकी कोई विकलता या कहीं विवशता नहीं है  
यह भी कि  
उसकी शांत-बंद पड़ी तिजोरी में जमा

किसी का विश्वास, रहस्य, प्रसंग  
एक-दूसरे के ऊपर तह-दर-तह कुछ यूँ पड़ा है कि  
वह स्वयं भी उस रहस्य लोक की  
यात्रा नहीं करना चाहता  
वह विश्वास करता है सुनने में  
और लोग विश्वास करते हैं उसे सुनाने में  
उसने बड़ी आत्मीयता से  
अपने धैर्य की आँच में गढ़ा है  
अपने कानों का यह गहना  
जहाँ सुनना और उसे पचाना  
अब उसकी गरिमा और साधना का  
अंग बनकर अपृथक रूप से जुड़ गया है उससे  
उसे विश्वास है अपनी मौनधर्मिता पर  
और इस पर भी कि  
भविष्य में उसके मौन को  
किसी अराजक या कहीं भ्रष्ट गोपनता का  
संरक्षक नहीं माना जाएगा

कहा जा सकता है कि  
सुनना भी एक ऐसी ही अनोखी और संयत क्रिया है  
जिसमें श्रोता अपने सम्मुख खड़े या  
कहीं दूर बैठे वक्ता से कुछ यूँ  
एकीकृत हो जाता है कि  
वक्ता की बातें क्या  
उसका स्वगत-कथन और मौन भी  
उसके कानों को भली-भाँति ग्राह्य होता है  
वक्ता और श्रोता के बीच वायुमंडल होता है  
या कहीं  
दोनों एक ही वायुमंडल में रहते हैं  
हवा पर तैरकर आतीं

तो कभी दूरभाष के तारों से चलकर आतीं ध्वनि लहरियाँ  
कानों तक शब्दाकार आती हैं  
वक्ता और श्रोता दो बिंदुओं पर खड़े होते हैं  
मगर संवाद के दौरान दोनों के हृदय की धड़कनें  
किसी एक बिंदु और किसी एक नाद पर  
एक जैसी धड़कती हैं

सुनना एक योग है  
जिसमें उच्चरित शब्दों को  
उसके पीछे की पूरी शब्द शक्ति और  
वक्ता की समस्त व्यंजना के साथ मिलाकर  
सुना-समझा जाता है

इसको उसको गौर से सुनिए  
अकेले सुनने पर  
बहुत-कुछ कहा-सुना जा सकता है ।

## मजिस्टर राम का शरणार्थी

कुछ देर पहले तक तो  
धूप ही थी राँची में  
मगर अब  
मूसलाधार बारिश हो रही है यहाँ  
दोपहर बाद  
सितम्बर के इन आखिरी दिनों में  
कुछ घंटे शेष थे अभी  
ट्रेन के आगमन में  
दिल्ली जाने के लिए;  
ठहरा था मैं  
एक साधारण होटल में  
पास ही स्टेशन के;  
इसलिए निश्चिंत था  
समय पर पकड़ लेने के लिए  
अपनी निर्धारित ट्रेन  
और आ धमकने के लिए  
अपने सुरक्षित बर्थ पर ।  
तफरीह करने के मन से  
निकलकर बाहर होटल से  
टहल रहा था मैं  
सड़क पर  
बहाना...  
जूते की छोटी-छोटी मरम्मत

10 वर्ष की उम्र में  
बड़े भाई के साथ  
सीवान से राँची आए  
और 20 वर्षों से  
मोची का काम कर रहे  
मजिस्टर राम के ठीए पर  
खड़ा मैं  
आसरा लिए  
बारिश में  
लिख रहा हूँ ये पंक्तियाँ  
इसी अवस्था में  
अपनी पॉकेट डायरी में  
हालाँकि  
जूते की मरम्मत  
पूरी हो चुकी है  
कब की  
ठीक सामने मेरे  
'क्वालिटी इन्स'  
एक थ्री-स्टार होटल  
खड़ा और फैला है  
अपनी भव्यता और प्रदर्शन के साथ,  
लगी हुई है  
गाड़ियों की लम्बी कतार  
अहाते के अंदर  
होटल के  
और बाहर  
सड़क पर भी  
बीत चुके  
कोई एक बीस-पच्चीस मिनट  
और जारी है बारिश अब भी;

सड़क के साथ बने नालों में  
घुसता रहा  
मुस्तैदी से और जादुई अंदाज में  
कुछ देर तक  
मगर शीघ्र ही  
पानी आ गया  
उनके गले तक  
और अब  
स्वयं वे ही नाले  
उगलने लगे वापस  
पानी को  
सड़क पर;

शहर में नालों के ऊपर  
सिल्लियाँ बनाकर कंकरीट की  
ढँक दिया जाता है उन्हें  
छोड़कर खाली जगह  
बीच-बीच में  
पानी के निकास हेतु;  
दो-दो फीट चौड़ी  
ऐसी जगहों पर  
बिखरा होता है साम्राज्य  
चायवाले, अंडेवाले  
लिट्टी, फल/जूस वाले  
साइकिल/मोटरसाइकिल की  
मरम्मत करने वाले,  
मोची आदि का  
दूसरी ओर  
सड़क के  
विराजमान होते हैं  
आलीशान होटल, मॉल

वातानुकूलित रेस्टोरेंट  
नर्सिंग होम आदि;  
अपनी रौनक और ज़रूरतें हैं  
सड़क के दोनों किनारों की  
किनारे जो स्वतंत्र हैं  
एक-दूसरे से  
और संबद्ध भी  
कहीं-कहीं;  
किसी तरह  
सौ-डेढ़ सौ रुपए रोज़ की  
कमाई करने वाला मजिस्टर राम  
(बरसात के मौसम में  
लाले पड़ जाते हैं  
कई बार इतने के भी)  
वापस आया है  
सीवान से राँची  
जबसे ही  
कर्जा चढ़ आया है उस पर  
आठ-साढ़े आठ सौ रुपयों का  
राशन देने वाले दुकानदार का  
बताता है वह सहज ही...  
'परिवार भी यहीं है न  
कमाकर भर दूँगा सब  
धीरे-धीरे'  
भरोसा है उसे  
अपनी मेहनत और उसके प्राप्य पर  
'ठीक-ठाक चल पड़ेगा  
काम भी  
बरसात के बाद

और चुक जाएगा  
तब उधार भी'  
उससे पूछता हूँ मैं निष्प्रयोजन  
रेट, सामने वाले होटल का  
बताता है वह  
अविचलित भाव से  
दतचित्त अपने काम में  
गर्दन ऊपर किए बगैर  
ठीक अपनी  
स्वाभाविक लय में  
'चौबीस घंटे के  
सोलह सौ/बाईस सौ/  
चौबीस सौ रुपये  
या इनसे अधिक'

खड़ा हूँ मैं जहाँ  
ठीक पीछे उसके  
लगभग छह फुट ऊँची  
चारदीवारी है  
पीछे जिसके  
बिछी है क्रतार  
रेल-पटरियों की;  
रेलवे की इस चारदीवारी  
और  
इससे कोई ढाई फीट की  
दूरी पर  
चारदीवारी की ऊँचाई से  
कुछ कम ऊँची  
बाँस की खपची को  
टिकाकर ज़मीन से

दीवार और खपची के सहारे  
तान/बाँध दी जाती है  
प्लास्टिक की चादर  
ढाल जिसकी  
आगे की ओर होती है  
( काम करते हैं अपना  
मुँह किए जिधर ये लोग )  
पहुँचकर अलस्सुबह  
उद्यम करता है यही  
हर खोमचेवाला  
दस मिनट तक  
और जिस  
दो बाई दो की जगह पर  
बैठकर  
व्यवस्था करता है वह  
दो जून की रोटी की  
अपने परिवार के लिए  
दिन ढले तक  
अपने बचाव में  
धूप/बारिश से  
तानता है वहाँ  
प्लास्टिक की चादर ही  
और देख लेता है वह  
एक नज़र इस पूरे उपक्रम में  
आकाश की ओर  
माँगता-न-माँगता सा कुछ  
सर्वशक्तिमान से  
अपनी बुदबुदाहट में;  
समय भी नहीं है

इससे अधिक का  
कदाचित उसके पास  
ईश्वर के लिए

तल्लीन था वह  
मेरे ही जूते की मरम्मत में  
और शुरू हो गई थी  
अचानक बारिश तभी  
बगल में श्रमरत  
उसके बड़े भाई के  
सिर के ऊपर टँगी  
प्लास्टिक की चादर  
तनी हुई नहीं थी  
ठीक से सम्भवतः  
पानी एक जगह  
जमा होता रहा कुछ देर  
और फिर  
नीचे गिरा हहराकर  
एकदम से  
वेगवती क्षिप्रता में  
भीग गया  
सारा सामान  
मजिस्टर राम का  
सामान...  
सस्ती प्लास्टिक के  
दो-चार छोटे-बड़े  
अधखुले थैले,  
जिनमें रखे थे  
कुछ निर्माणाधीन तो कुछ  
मरम्मत के वास्ते आए,

कुछ एकदम नए तो कुछ  
पुराने घिसे-घिसाए जूते-चप्पल  
चमड़े के छोटे-बड़े टुकड़े  
काले-भूरे कई तल्ले  
अलग-अलग गुणवत्ता के,  
पैसे और ज़रूरत के हिसाब से  
उन थैलों में रखे थे  
जूतों के अंदर लगने वाले  
कई रंगों के पातावे  
और चर्मकारी में उपयोगी  
दूसरे दर्जन भर सामान भी  
पानी गिरा अपनी मोटी धार में  
अचानक से  
उसने फटाफट  
मेरे जूतों को  
पीछे दीवार में लगी  
कील पर टँग दिया  
फिर अपने सामान को भी  
मैंने पाया...  
मेरी पीठ पीछे  
दीवारों में लगी इन कीलों की  
ऐसी उपयोगिता  
अलक्षित थी मुझसे  
अब तक

कहने लगा मजिस्टर राम  
'अब तो दिन-भर  
कोई काम होने से रहा'  
और मैं सोचने लगा...

आधे-पौन घंटे की बारिश  
खराब कर सकती है पूरा दिन  
किसी हुनरमंद का  
और पानी फेर सकती है  
शाम ढले तक  
सौ दो सौ रुपये कमा लेने की  
उसकी जुगत पर

शुक्रगुज़ार हूँ मैं  
मजिस्टर राम का  
जिसके ठीहे पर  
दो बाई दो की  
प्लास्टिक के चादर के नीचे  
खड़ा होकर  
और जिसका सैंडल  
(प्लास्टिक का)  
पहनकर  
राँची के स्टेशन-रोड पर  
आधे घंटे की तेज  
अचानक आई  
मूसलाधार बारिश में  
मैंने खुद को और  
अपने जूते को  
बचाये रखा  
गीला होने से;  
मजिस्टर राम के प्रति  
मेरी यह कृतज्ञता  
घनीभूत हो जाती कुछ और  
जब अपने ठीक सामने  
मोटरसाइकल/ऑटो

रिक्शा पर जा रहे  
या पैदल गुज़र रहे लोगों को  
मैं देखता  
भीगा/अधभीगा/परेशान...  
इस बीच  
कुछ कार वाले  
जा रहे होते  
तेज रफ्तार में  
जिससे छिटक कर आने वाले  
पानी के तेज छींटों से  
हम दोनों अपने-आपको  
किसी तरह बचाने की  
कोशिश करते और  
कोसते उन्हें मिलकर  
जी-भर  
मैं अहसानमंद हूँ  
सातवीं तक किसी तरह पढ़े  
मजिस्टर राम का  
जिसे अपनी ही जूते-बनवाई के  
मात्र पाँच रुपये देकर  
जिसके श्रम-शिविर में  
आधे घंटे तक  
न सिर्फ मैं शरणार्थी रहा  
बल्कि दरारों से भरी ज़िंदगी में  
जिसकी दृढ़ता, सहजता और  
आत्मविश्वास देख  
कुछ-न-कुछ प्रेरणा ही  
प्राप्त की मैंने।

## आजकल मैं पटना जंक्शन पर नहीं उतर रहा हूँ

कई काम आ पड़ते हैं  
कार्यालयी, गैर-कार्यालयी  
और मुझे  
गुज़रना होता है  
पटना जंक्शन से होकर  
कोलकाता, सिलीगुड़ी  
तो कभी गुवाहाटी तक सीधा जाते  
यहीं दिल्ली से  
मगर जाते या लौटते हुए  
नहीं उतर रहा हूँ  
बीच में, पटना जंक्शन पर  
आजकल

पटना जंक्शन  
जहाँ से कुछ ही फासले पर  
एक शहरी पिछड़ी बस्ती में  
किराए के अपने छोटे से कमरे में  
नए-पुराने कुछ छिटपुट सामानों के साथ  
गठरी की भाँति किसी तरह  
सिमटे होंगे मेरे माता-पिता



अपनी अधपकी नींद के  
 सच्चे-झूठे, कच्चे-पक्के सपनों में  
 वह वृद्ध दंपति  
 देख रहा होगा  
 उनका बड़ा बेटा  
 उनके पास आया है  
 और उन थके-बुझे चेहरों पर  
 कुछ देर के लिए ही सही  
 निस्पंद प्रसन्नता की रेखाएँ  
 खिंच गई होंगी  
 मगर तभी...  
 ट्रेन की दूर जाती और क्रमशः  
 मद्धम होती सीटियों को सुनते न सुनते  
 वे हड़बड़ाकर उठ बैठे होंगे  
 कुछ-कुछ बड़बड़ाते हुए...  
 हाँ, वह पटना से  
 अभी-अभी गुजरा तो है  
 लेकिन जाने क्यों  
 हमारे पास नहीं आया है  
  
 एक पेंशनयाफ़ता की ज़िंदगी  
 जी रहे मेरे पिता  
 अपने चरमराते तख़्त से  
 उठकर बैठे होंगे  
 और स्फुट-अस्फुट अपने स्वरों में  
 सीता-राम, सीता-राम के  
 अपने उपांशु जप की जाग्रत ध्वन्यावृत्ति से  
 अंधेरे की रहस्यमयता को चीरते  
 जब उनके कंपायमान होंट सूखने लगे होंगे

और जब प्यास असह्य होने लगी होगी  
 तो माँ से अपनी धीमी आवाज़ में  
 किसी सकुचाए अपराधी सा  
 पानी का एक गिलास माँगा होगा  
 और माँ चिड़चिड़ेपन में  
 अपने पति की कसकती पीड़ा को  
 आत्मसात करती हुए  
 और चुप रहने के अपने  
 लाख निष्फल प्रयत्नों के बावजूद  
 अपनी ऊँघती, उखड़ती, उचटती झल्लाहट  
 को प्रकट होने से  
 अंततः रोक नहीं पायी होगी

अपने बच्चों के लिए  
 रोम-रोम  
 अपने जीवन के होम करते  
 और ताउम्र अपनों से  
 लड़ते-झगड़ते  
 असमय बूढ़े हो चुके पिता को भी  
 तत्काल कुछ प्रतिवाद  
 न सूझ रहा होगा  
 माँ की कसकती बातों  
 घोर यथार्थजन्य लाँछनों का  
 फिर भी  
 दाईं हथेली पर  
 अपनी बाईं हथेली को चढ़ा  
 उस पर अपने दाएँ अँगूठे से  
 तम्बाकू मलते हुए उन्हींने  
 अवश्य कोई-न-कोई युक्ति

निकाल ही ली होगी  
अपने बड़े बेटे के इस क्रदम के पक्ष में  
और अपनी ठेठ, घरेलू  
मगर सहज तर्क-कौशल से चालित  
अपनी पत्नी को सांत्वना देने  
की झूठी कोशिश में  
और फिर अपने अंदर के  
उमड़ते-घुमड़ते भावों को  
छुपाते खुद से भी  
एक झटका दिया होगा अपनी गर्दन को  
और सहसा अपना ध्यान हटा लिया होगा  
माया-मोह के इन पचड़ों से  
और एक बार पुनः वे ध्यानमग्न हो गए होंगे  
अपने जाप में  
कमरा गुंजायमान हो उठा होगा  
सीता-राम, सीता-राम  
सीता-राम, सीता-राम की लयात्मक  
आवृत्तिमूलक ध्वनियों से।

## अँधेरा

प्रकृति की विरासत से तुम्हें  
दिन और रात मिले थे  
मगर तुम्हारी ज़रूरत  
तुम्हारे प्राप्य से बाहर जा रही थी  
तुम में बेसिर पैर की आकांक्षाएँ  
आकार लेने लगीं,  
बढ़ने और फैलने लगीं  
अपनी बेतरतीबी में

प्रकृति की अन्यथा कल्याणकारी नाप-जोख  
तुम्हें असंतुष्ट रखने लगी  
और तुमने  
पहले आग और बाद में  
बिजली की खोज की

भोग और विलास का पहाड़  
ऊँचा और ऊँचा  
उठता चला गया

ताकतवर लोगों का 'कार्टल' बना  
बिजली, तेल, कोयला, लोहा आदि  
शक्ति के सभी संसाधनों के

उत्पादक, उत्खननकर्ता, नियंत्रक  
वितरक और उपभोक्ता सभी वही बने  
रोशनी के चंद क्रतरे  
किसी और को मिल जाएँ,  
उसकी मर्जी ठहरी  
नतीजा...  
बिजली है और नहीं भी  
जहाँ है, जरूरत से अधिक  
जहाँ नहीं है, आपात स्थितियों में भी नहीं  
अनिवार्य आवश्यकताओं के लिए भी नहीं

प्रकृति की विरासत से तुम्हें  
दिन और रात मिले थे  
सबको बराबर मिला था  
प्रकाश और अंधकार  
दुनिया तब एक दिखती थी  
मगर जब तुमने ढूँढ़े  
रोशनी के विकल्प  
उसके क्रतरो में  
बँट गई दुनिया  
जिसके एक बड़े हिस्से में  
चला आया अंधकार  
जो कहीं अधिक अप्राकृतिक  
अन्यायपूर्ण और भयावह है

प्रकृति की तुला पर  
तुम सबका वजन एक था  
मगर उसकी डंडी  
जब तुमने थामी  
मालिक बना तो कोई नौकर

शोषक बना तो कोई शोषित  
पूँजीपति बना तो कोई सर्वहारा  
प्रकृति की विरासत से तुम्हें  
दिन और रात मिले थे  
मगर तुम्हें यह विभाजन पसंद नहीं था  
तुम्हें यह बराबरी खलती थी  
तुम्हें अंधेरे में रहना  
जंगलीपन और असभ्यता का प्रतीक लगा  
तुम प्रकाश के पथ पर  
आगे बढ़े  
सभ्य होते चले गए  
तुमने मनुष्यों की मंडियाँ लगाईं  
गुलामों की खरीद फरोख्त की  
और उन्हें पशुओं के पैरों में बाँधकर  
'दौड़ प्रतियोगिता' का मजा लिया  
अपने विरोधी स्वरो को  
क्रतारबद्ध कर  
'कांसनट्रेशन कैम्प' के हवाले किया  
तो कभी उनके शहरों पर  
एटमबम गिराकर  
उन्हें पल-भर की रोशनी में  
ऐसा नहाया  
कि आने वाली कई नस्लें  
रोशनी के भय से  
अपनी आँखें नहीं खोल सकीं

तुम्हें रोशनी पैदा करना आया  
रोशनी में जीना भी  
मगर तुम्हें अंधेरे कोनों को  
रोशन करना नहीं आया

एक से बढ़कर एक  
हुनर सीखा तुमने  
मगर उजाला बाँटने का हुनर  
तुम्हें नहीं आया  
तुम सीखना भी नहीं चाहे

दिन और रात के अंतर को  
तुमने पाट दिया  
और बढ़ा दी  
मनुष्य और मनुष्य के बीच की  
खाई को  
तुमने अपना  
'ज्योति रथि' दौड़ाया  
प्रकृति के सीने पर  
मगर तुम हार गये  
अपने अंदर के अंधकार से।

## अकेला होता आदमी

आदमी अकेला हो गया है बेहद  
घर-बाहर, दोस्त-दुश्मन  
और हाँ, परिजन भी तो  
किन्हीं के बीच लिप्त हैं बुरी तरह  
किस्म-किस्म के अपने गोरखधंधों में  
किसी भी रागात्मक संबंध-निर्वाह-निरपेक्ष  
तौलते हुए लाभ-हानि महज  
अपने अनवरत आत्मकेंद्रण में।

अकेला हो गया है आदमी  
विचारों और विश्वासों के बीच भी  
सुविधानुसार जो बह पड़ते हैं  
इस धारा से उस धारा में  
इस पंथ से उस पंथ में घोर बेशर्मी में  
विरूपित और विकृत करने  
निरंतर व्यक्ति की छवि को  
कुछ अधिक अपने तई  
रीढ़विहीन, द्वंद्वरहित एकदम से  
मुखतिब हम  
किसी-न-किसी ढलान की ओर  
पानी के बहाव से  
कोई भी शकल अख्तियार कर

हँसते-खिलखिलाते समर्थक  
विरोधी के समूह में  
परिचित/अपरिचित मोड़ पर  
सहज प्रगतिशील तो कभी अवसरवादी  
किसी भी रूप में  
किसी भी राह पर

घर में और बाहर  
अकेला पड़ता आदमी  
किसी पेंडुलम-सा झूलता  
विश्वासों की पोटली बनाए  
टिकाए दाएं तो कभी बाएं कंधे पर  
उसके वजन का रहा नहीं कोई अर्थ  
दूसरों के लिए  
अपने लिए भी ।

## तीन पीढ़ियों के बीच चौथी पीढ़ी

आ गयी हूँ मैं ऑफिस  
तैयार कर तुम्हें स्कूल को  
कह रखा है तेरे पापा को  
सैकंड हाफ में  
पहुँचे वे सीधा घर  
ऑफिस से

ऑफिस में बैठी  
देख रही हूँ एकटक  
लाल धागे को  
बंधा है जो  
मेरी कलाई पर  
कितने लाल 'अंबुज'  
खिल उठते हैं  
मेरी आँखों में  
आस-पास बैठे लोगों से  
बेखबर  
कुछ-कुछ ढीठ सा;  
सामने शून्य में स्थिर आँखें  
लौटती हैं छह बरस पीछे...  
आज ही के दिन  
मक्खन का एक बड़ा

जिंदा लोना  
मेरी बांहों में आया था  
स्व-रक्त-सिंचित  
रेशम के उस गुच्छे को  
अपने अंक में लेना और चूमना...  
सुफल पाया था मेरा स्त्रीत्व  
उस पावन दिन

याद है आज भी  
तेरे पापा ने  
नवाजा था हम दोनों को  
परम्परागत लेकिन प्रसंगानुकूल  
उपमान से  
मुझे 'पूर्ण चन्द्रमा'  
और तुम्हें 'नवोदित सूर्य'  
कहा था उन्होंने।

बेटे!  
आज तेरा जन्मदिन है  
लेकिन नहीं छोड़े हमने  
काम अपने-अपने  
भली लग रही है  
आज के दिन  
अपनी पुरानी दिनचर्या  
और गतिशीलता भी

शाम है  
और एक स्त्री जो  
माँ है

पत्नी है  
वधू है  
बैठी है  
अपनी सारी संपदाओं समेत  
परिवार के बीच  
अपने बेटे के जन्मदिन पर  
कितना भीना-भीना लग रहा है  
सुबह ही से  
बैठी थी जब  
पूजा की वेदी पर  
अपने लाडले ईश्वर के लिए  
ईश्वर से कितना कुछ माँगने  
बेटे!  
अभी जब तू  
किलकारी भर रहा है  
इन सबके बीच  
या जब  
थककर जम्हाई लेता  
मेरी गोद से  
नींद की गोद में जाता है  
देख लेती हूँ  
समस्त ब्रह्माण्ड  
तेरे मुँह ही में  
जी लेती हूँ तुम्हारे बहाने  
पौराणिक और महाकाव्यात्मक  
अपनी जातीय स्मृतियों को  
रोमांचित होता है  
पूरा शरीर  
यशोदा और कौशल्या की

चेतना से संपृक्त होकर  
सोचती हूँ  
हर शिशु  
कृष्ण या राम होता है  
अपनी माँ के लिए  
अपने देश में

धूमधाम नहीं किया विशेष  
पिछले साल इसी महीने  
टूट गया था  
तेरा बेशक्रीमती खिलौना  
खेलता था जिससे तू दम भर  
और जो स्वयं से  
दूर नहीं करती थी तुम्हें पल भर  
तेरी 'चाई' जा चुकी थी  
तुमसे दूर  
हम सबको अकेला छोड़ कर  
मुरझा गये थे  
तेरे पापा भी  
अपनी दादी को खोकर  
नहीं रहा था कोई  
एक बच्चे के बाप को  
बच्चा समझने और डाँटने वाला...  
पाँच मिनट की भी देर होती  
अगर मेरे घर पहुँचने में  
बरामदे में बेचैन  
टहलने लगती थी वह  
अपनी 'पोत-पतोहू' के लिए  
रह-रह कर

बाहर झाँकते हुए  
बेटा !  
इस वर्ष का तुम्हारा जन्मदिन  
समर्पित है  
उसी बड़े गुम हो चुके खिलौने की  
याद को ।

बेटे !  
जरा देख तो ऊपर  
आकाश से उतरती  
आह्लादित इन दो बाँहों को  
जो फैल रही हैं  
अंक में समेटने को  
तुम्हें ही शायद !

## परदे से झाँकता डर

एकदम से  
नहीं खिल उठता कोई फूल  
संगीत का आलाप भी  
क्रमशः उठान लेता  
पहुँचता है शिखर तक  
नशा, सौंदर्य, गंध और नाद  
जिसका हो  
सर चढ़कर बोलता है  
मगर हौले-हौले,  
सूखा पहले तो  
अधगीला ही होता है न!  
और फिर भीगता है  
कण-कण सराबोर  
पानी की बौछारों को  
समाकर अपनी सूखी चादर में  
खेत पहुँचाते हैं  
मिट्टी की सौँधी महक  
हमारे नासिका-पुटों तक  
मगर इसमें भी  
कुछ देर का इंतज़ार तो  
लाज़िमी ही है न!

इंसान हो या धरती  
बारिश भी  
एक झटके में सराबोर नहीं करती  
किसी को

पानी को चीरना  
हवा में तैरना  
और पहाड़ को  
लाँघना भी हमें आया  
तो सदियों की  
मानवीय उर्वरता का उद्विकास  
उसके पीछे है  
और उसमें  
निरंतर बेहतरी की गुंजाइश  
बची है आज भी

नफरत प्रेम में  
और प्रेम नफरत में  
बदलता चला जाए  
कब किस तरह  
इसका अंदाजा भी  
अक्सरहाँ देर से ही होता है

ये जगजाहिर दृष्टांत हैं  
और अपने बचाव में  
मैं इनका कोई आलंबन नहीं ले रहा  
हाँ हवाला दे इनका  
मैं अपने आस-पास  
किसी एक बाजू  
थोड़ी जगह



कोरी रखना चाहता हूँ  
अछूती और अनजान

अगर मैं  
अपने साए से भी  
यह उम्मीद करता हूँ  
कि वह हरदम  
मेरा हमक़दम बनकर न चले  
तो ऐसा नहीं कि  
मैं झूठा या अविश्वसनीय हो उठा  
हाँ, गोपनता को  
मैं थोड़ी पसंद करता हूँ  
या यूँ कहें कि  
मैं किसी के सामने  
धीरे-धीरे खुलना चाहता हूँ  
और संभव है कि  
ऐसा करते हुए  
कहीं मेरे 'अंदर का कायर' भी  
कदाचित् एक संरक्षण  
महसूस करता हो  
बेशक उसका सुरक्षा-बोध  
उस कछुए का ही  
क्यों न हो  
जो अपने ही खोल में छुपकर  
स्वयं को निरापद समझने के  
एक भोले भ्रम में  
जीता हो

कई चीजों में  
कई लोगों के सामने

संभव है  
मैं एकदम से  
नहीं खुलता  
नहीं खुलना चाहता,  
मुझे अच्छा लगता है  
अपने दाएँ और बाएँ हाथ  
के बीच  
अपनी गर्दन घुसा लेना  
यूँ झुकी गर्दन को  
मेरी परदादारी समझें  
या मेरा डर-  
यह आपके ऊपर है।

## सभी तुम हो

मैं हूँ  
आवेग  
दृष्टि  
स्पर्श  
संप्रेषण  
और तुमसे

मैं उगता हूँ  
आँगन  
कोटर  
शिला  
पोखर  
और तुममें

मैं निस्तेज हूँ  
कंपन  
ध्वनि  
तड़ित  
बादल  
और तुम्हारे बगैर

मैं चाहता हूँ  
छुपा रखना  
अपनी मुट्टी में  
समय  
सुवास  
आभा  
ईश्वर  
और तुमको

मैं गूँजता हूँ  
शब्द  
श्वास  
गिरि  
अंतरिक्ष  
और तुममें

मैं पसर रहा हूँ  
खामोशी  
कविता  
दिशा  
इतिहास  
और तुम में

आवेग...दृष्टि...दिशा, इतिहास  
सभी तुम हो।

## मेरा देवता

देवता मैं भी पालता हूँ  
मगर ज़रूरी है कि  
वह मेरे स्वभाव पर चढ़े  
सहज, सहर्ष और समानुकूल  
जो मेरा पथ प्रदर्शक हो  
मगर जिसे मेरा प्रारब्ध  
तय करने का गुमान न हो  
जिसके आगे मेरा सिर झुक जाए  
स्वयमेव, सादर  
और मैं  
छोटा भी न होऊँ  
अपनी नज़रों में

देवता मैं भी पालता हूँ  
मगर जो  
देश-देशांतर के पार  
किसी अदृश्य दुनिया में,  
किसी क्षितिज पर या  
उसके पार  
निवास न करता हो  
बल्कि  
जो मेरे आस-पास

किसी भटकाव में तो कभी किसी सफर पर  
किसी रास्ते में तो कभी किसी मंजिल पर  
पड़ोस में तो कभी मेरे कार्यस्थल पर  
धूप-बारिश सहती और  
हर मौसम के उतार-चढ़ाव को झेलती  
इसी पृथ्वी पर रहता हो  
किसी संकट में उससे गुहार  
करने के लिए  
मंदिर तो कभी मस्जिद के  
घंटे-अजान का  
सहारा लेना पड़े  
और न ही  
किसी पवित्र चौखट/स्थल तक  
पहुँचने के लिए  
किसी रेलम-पेल का  
गरिमाहीन, असुरक्षित और  
दयनीय हिस्सा बनना पड़े मुझे,  
बल्कि, किसी धूप छाँव में  
जो मेरे झुके-थके कंधे पर  
अपना स्नेह पगा हाथ रख दे  
अयाचित, अनपेक्षित, भार-अभार से मुक्त  
और हो सके अगर उसके वश में  
ते उबार दे मुझे  
अपने तई  
किसी समस्या से, किसी हद तक  
बेशक कभी-कभार ही सही

देवता मैं भी पालता हूँ  
मगर जिसकी महानता

मेरी आस्था के लिए गरिष्ठ न हो  
जो मिथकों से आया  
सत्तासीन, आपादमस्तक कोई कुलीन न हो  
देवत्व जिसके लिए  
उत्तराधिकार में प्राप्त  
निरा भोगविलास न हो  
बल्कि जो कर्मठ, पुरुषार्थी हो  
पसीना बहाना जानता हो  
जिसे आख्यान त्राता न कहता हो  
मगर अपनी सदाशयता में  
जो हर लड़खड़ाते क्रदम को  
सँभालता चाहता हो  
कुछ इस तरह कि  
वह बचाना चाह रहा हो  
खुद को गिरने से

देवता मैं भी पालता हूँ  
मगर जो उद्धत न हो  
अपनी सत्तासीनता में  
बल्कि, जो उद्यत हो  
किसी के काम आ जाने के लिए  
अपनी भरपूर विनयशीलता के साथ  
जो मनुष्य ही हो, हाड़-माँस का बना  
हमारे बीच का, हममें से उठा हुआ  
जिसकी प्रवृत्ति, नीयत और लिप्सा  
अनंत न हो,  
जिसकी महिमा  
मगर जिसके कृत में हो यह संभावना  
कि वह यादगार बन जाए

अनंत तक,  
जिसका बल बेशक कम हो  
मगर वह कहीं से  
अविश्वसनीय और मायावी न लगे  
जो सत्यवादी हो, न हो  
मगर सत्यान्वेषी हो;  
जिसके परिधान  
स्वच्छ और अक्षत ही न हों हरदम  
बल्कि जिन पर धूल-मिट्टी और  
मैल-चिक्कट भी जमते हों  
और जो बीच-बीच में  
अपने इस्तेमाल से छीजते भी हों  
देवता मैं भी पालता हूँ  
मगर वैसे नहीं  
जो अपने अहम और लालच  
के वशीभूत  
समस्त सृष्टि को ही  
दाँव पर लगा दें  
और जिसके लिए  
किसी कामायनीकार को कहना पड़े-  
'देव दंभ के महामेध में  
सब कुछ ही बन गया हविष्य'

देवता मैं भी पालता हूँ  
मगर ज़रूरी है कि  
वह हो इतना साधारण और अपना  
कि कहीं से देवता लगे मुझे  
और न दुनिया को ही।

## चाकू की नोक पर एक सवाल

अपनी दीर्घकालीन और  
असह्य हो चुकी पीड़ा से कराहता  
और अपने अस्तित्व के दुचित्तेपन से  
अजिज्ञ आकर  
जा पहुँचता है चाकू एक दिन  
लुहार की भट्टी में  
और अपने बेहद ठंडे स्वरो में  
पूछता है उससे  
'तुमने मेरा निर्माण क्यों किया?'

बुझते कोयलों को  
अपने पुराने पड़ चुके भाथी से हवा देता  
झुर्रियों में सिमटे, कालिखपुते अपने चेहरे को  
उधड़ी, मैली अपनी बायीं आस्तीन से पोंछता एकबारगी  
और उसकी ओर  
अपनी थकी, मलीन आँख उठाकर देखता  
परिश्रमपूर्वक फीकी हँसी हँसता  
राखयुक्त अपने स्याह होंठों पर  
अपनी खुरदरी जीभ फिराता  
लुहार फुसफुसाता है  
(मानो घबड़ा गया हो उसके इस सवाल से)  
पेट पालने की खातिर

सान पर अपनी धार तेज किए  
और एक झटके में  
चीर-फाड़ कर देने वाले  
अपने तमतमाए तेवर में  
चाकू सहसा प्रकट होता है  
नामचीन हत्यारे के सामने  
उसके किसी गुमनाम अड्डे पर  
अँधेरी गलियों की खाक छानता बमुश्किल  
और कड़क व नुकीली अपनी आवाज़ में  
पूछता है प्रत्यक्ष ही  
लक्षित करके सीधा उसे  
उसके पाले हुए गुरगों के सामने ही  
'तुमने मुझे बदनाम क्यों किया?'

देसी दारू के नशे में झूलता-लहराता  
सँभालता किसी तरह अपने आपको  
खौफनाक और लापरवाह हँसी हँसता  
हत्यारा बड़बड़ाता है  
अपनी लड़खड़ाती आवाज़ में  
(मानो उसके लिए यह सवाल बेमतलब है)  
'पेट पालने की खातिर'

लुहार और हत्यारे के  
एकरूप मुहावरों को  
उनके भिन्न संदर्भों में  
देखने-समझने की कोशिश करता  
और दोनों के पेटों की थाह लेता  
चाकू सोचता है

बुझे मन से  
असहाय अपनी तेजहीन शीतलता में  
और सोचते हुए तब  
उसे अपनी धार  
सहसा कुछ कुंद होती दिखती है-  
'निर्माता और उपयोगकर्ता के बीच  
मैं  
कब और कैसे  
इतना डरावना और हिंसक हो उठा।'

## कुआँ

### एक

आज पक्की ईंटों से बना कुआँ  
साँय-साँय करता एकदम बेजान पड़ा है  
महीने-दो-महीने में जब थकी-हारी  
अनुत्साहित माँ बेकसूर होकर भी  
गाँव वालों से अपना चेहरा छुपाए  
मुख्य रास्ते को छोड़  
पिछवाड़े से घर में आती है  
तो सबसे पहले अपने काँपते हाथों  
से धूल का अंबार हटाती है  
और फिर घर में कब्जा जमाए  
अँधेरा झट दूर भाग खड़ा होता है  
मानों डरता हो आज भी घर की मालकिन से  
बेशक बूढ़ी और अकेली ही सही  
पहले जैसी जान और गति कहाँ रही उसकी  
रुक-रुक कर ही सही मगर माँ  
धूप-दीया दिखला देती है पूरे घर को  
और कुएँ को भी।

## दो

माँ कुँ की जगत के पास आकर  
उस पर अपनी कुहनी टिकाए  
देर तक आँखें बंद किए खामोश बैठी रहती है  
जाने क्यों कुँ से टिकी माँ की आँखों से  
आँसू की दो धाराएँ बह निकलती हैं  
फट पड़ना चाहता है उसका हृदय  
मगर तभी अपने पति के कई अधूरे काम  
याद आते हैं उसे और  
सम्भाल लेती है वह अपने-आपको ।

## तीन

कुँ माँ को अतीत में  
लेकर चला जाता है...  
तब वह नई-नवेली दुल्हन बनकर  
इस घर में आई थी  
इस कुँ का पानी ही यहाँ ससुराल में  
उसने सबसे पहले ग्रहण किया था  
मगर हाय रे समय का चक्र  
पति संसार छोड़ गया और बच्चे यह घर  
माँ इन सभी की ओर से कुँ से माफी माँगती है ।

## चार

माँ की निःशब्द भावना को देखकर  
कुँ पसीज जाता है...  
सतह के नीचे  
भीगा-अधभीगा अपने एकांत में देर तक  
डूबता-उतराता रहता है ।

## पाँच

कुँ खाली है जैसे माँ की माँग  
दोनों के अपने-अपने दर्द हैं  
दोनों एक-दूसरे के सूनेपन को जानते-समझते हैं  
दोनों को समय ने एक ही तलछट पर  
लाकर पटक दिया है  
एक ने इस घर को पानी दिया और दूसरे ने दूध  
मगर आज ये दोनों स्रोत सूख चुके हैं ।

## खूँटी

### एक

मुझे  
ज़रूरत थी  
एक खूँटी की  
टाँग सकता था जिस पर  
स्वप्न,  
यौवन,  
मुखौटा और  
दर्द भी अपना  
मैंने पार की  
दीवारें कई  
मगर  
सपाट थीं सभी  
नहीं मिलनी थी  
नहीं मिली  
कोई खूँटी कहीं।

### दो

दिखते हैं एक से  
कुछ-कुछ उखड़े हुए  
कवि, राजनेता और अपराधी

और  
दिख जाती हैं खूँटियां  
जब-तब  
उनके चेहरे पर  
तो कभी  
उनके स्वभाव में।

### तीन

फसल  
पहुँच जाती है  
खलिहान में  
अनाज चला जाता है  
मंडी में  
छोड़ दी जाती हैं  
या फिर जला दी जाती हैं  
यूँ ही  
खेतों में  
खूँटियां।



## चाकू

चाकू टटोलता है  
अँधेरी रात की गाढ़ी,  
रहस्यमयी, डरावनी चादर को  
कोशिश करता है  
भाँपने की  
उसके इरादे भी  
अपनी झक सफेद धातुई कांति की  
भेदक द्रुतमयता में  
कदाचित पूछना चाह रहा हो वह  
अविचल, खामोश पसरी रात्रि देवी से  
'तुम्हारा-मेरा रिश्ता कैसा है?'  
फुसफुसाती है अँधेरी रात  
अपने स्याह होंठों से  
चाकू की शीतलता को  
एक नृशंस, नामालूम सी उष्णता देती  
उसके धार को कुछ और  
पैना करती  
अपने तई  
कहती है...  
मेरे और तुम्हारे मेल से ही  
पैदा होती है भयानकता और क्रूरता  
जिसके प्रभाव में मनुष्य

होकर योजनाबद्ध तो कभी आकर आवेश में  
साधता है  
अपना स्वार्थ, आक्रोश और  
जाने कैसे मनोविकार और रोग  
और इस तरह  
निकाल फेंकता है वह  
गले की अपनी कोई फाँस  
तो कभी रास्ते का कोई अवरोध  
एक झटके में  
रक्तरंजित करता तुम्हें  
और खौफनाक बनाता मुझे  
हमेशा-हमेशा के लिए

चाकू अबोला  
भीगता रहा  
रात्रि के अंदर जमीं  
इस करुणा के बहाव से  
खुले आसमान तले  
सुबह होने तक ।

## बाज़ार

बदल रहा है परिदृश्य  
तेजी से  
हमारे आस-पास का  
और बाज़ार का दैत्याकार पंजा  
कसता चला जा रहा है  
हमारी गर्दन पर  
और हम इससे बेखबर  
भागे चले जा रहे हैं  
बेतहाशा  
सोने की हथकड़ी झुलाते  
अपनी कलाईयों में, बड़े शान से  
नोटों की गड्डी दबाए  
अपने दाँतों से

बाज़ार  
अपने आप में नहीं होता  
अच्छा या बुरा  
मगर हाँ,  
बुरे होते हैं  
उसके आकर्षण, जादू  
और उसकी चकाचौंध को  
स्वीकार कर लेना  
ज्यों का त्यों  
किसी यंत्रचालित सा  
तय किए बिना

अपनी प्राथमिकता  
अपनी आवश्यकतानुसार

बाज़ार पसर रहा है  
हमारे बच्चों की  
मासूम किलकारियों में,  
पत्नी की मारक अदाओं में  
और हमारे घर के शयनकक्ष तक  
संबंधों के निर्वहन और  
उनके बीच की ऊष्मा को  
अपनी भाषा और संवेदना में  
ढाल रहा है बाज़ार

बाज़ार का नहीं होता  
अपना कोई देश  
वह बदल लेता है चतुराईपूर्वक  
अपना स्थान  
अपनी भाषा और  
अपना पहनावा भी  
वह अपने हित में  
अंतर्राष्ट्रीय संधियाँ करवाता है  
और स्वयं को मुक्त रखता है  
किसी सीमा, संविधान और संप्रभुता के घेरे से  
वह बहुत तेज दौड़ता है  
चिकनी सड़कों और चेहरों पर  
सरसराता हुआ भागता है  
चिकनी हथेलियों के बीच  
फरटि की तरह;

श्रम बिकता है  
बाज़ार में

बिकती हैं ज़रूरतें  
और इनके बीच  
मुनाफा कमाते हैं बिचौलिए  
बाज़ार रोक देता है  
उत्पादक और उपभोक्ता के  
प्रत्यक्ष, आत्मीय संबंधों को  
चुपके से  
और बना डालता है  
कई दीवारें अवरोधों की  
अपरिचय की  
और फिर मुनाफे के हिसाब से  
गढ़ता है  
नई सुविधाएँ और नए परिचय  
बाज़ार कमाता है इस तरह  
दोनों ही पक्षों से

बाज़ार नहीं है  
किसी भी पक्ष का  
मगर है कुछ ऐसी सम्मोहकता  
उसके शब्दार्थ और व्यवहार में  
कि वह अपना लगता है  
दोनों ही पक्षों को  
हम भूल जाते हैं  
बाज़ार में भुनाया जाता है  
अपनापन भी  
नोटों और सिक्कों की तरह

बाज़ार का विस्तार  
हमारे हित में है  
बाज़ार बताता है हमें  
बाज़ार बुरा नहीं है।

## शहर में कवि

### एक

अपने जीवन के  
सर्वाधिक, उदास, मटमैले दिनों में  
मैं कविताएँ रच रहा था तुम पर  
और तुम नहीं थी मेरे सम्मुख  
मेरे पार्श्व में  
कहीं भी  
यह शहर  
अट्टहास कर रहा था  
अपनी दशाननी लंपटता और उसके अंतहीन विस्तार पर  
जहाँ एक कवि को  
बमुश्किल मिली उसकी प्रेरणा  
गुम हो गई थी पलक झपकते  
किसी भीड़-भरे चौराहे से  
जाने कहाँ किस दिशा में

कवि नामक  
दयनीय और बौने जंतु के  
सुख-दुख की  
स्मार्ट और प्रैक्टिकल शहर को  
कोई परवाह क्योंकर होती

बेमानी समझी जा रहीं  
भावनाओं से क्या सरोकार रखता भला  
एक व्यवसायी शहर !

अपनी रफ्तार तले  
जाने कितनों को  
विक्षिप्त करते और इतराते  
शहर को हैरानी होती  
मैं अब तक सही-सलामत कैसे हूँ  
मैं अब भी  
अनुलाभ से अधिक  
अनुराग की बात  
क्यों करता हूँ !!

## दो

यह वही शहर है  
जहाँ तुम पैदा हुई  
पली-बढ़ी और  
जिसके पक्ष में लड़ना  
स्वाभाविक है तुम्हारे लिए  
आवश्यक भी  
कुछ-कुछ पितृ-ऋण  
चुकाने जैसा

यह वही शहर है  
जहाँ कभी बेचारगी  
तो कभी बदहवासी में  
लुढ़कता रहा हूँ मैं  
सड़क पर अलक्षित पड़े

किसी आवारा गेंद-सा  
धूल-धूसरित और अनुपयोगी  
हरेक की नज़र में,  
राह चलते लोगों के पैरों में आता  
इधर तो कभी उधर  
दर-दर की ठोकर खाता  
कोसों दूर किसी मंज़िल से  
निरर्थक उम्मीद में  
किसी सुरक्षित संरक्षण की

यह वही शहर है  
जिसे कोस रहा हूँ मैं  
अपने आक्रामक, तीखे, नाटकीय अंदाज़ में  
किसी मँजे-पके रंगकर्मी-सा  
अपने भाषाई कौशल एवं  
अपनी स्वर-ग्रंथियों का  
भरपूर दोहन करता हुआ  
तुम्हारे ही सामने  
जानता हूँ मैं यद्यपि  
नहीं भर सकूँगा  
बिवाइयाँ अपने तलवों की  
ऐसा करके मगर  
सहला लेता हूँ मैं  
अपने पुराने, हरे जख्मों को थोड़ी देर  
और जी लेता हूँ  
इस भ्रम में कि  
मैं प्रतिकार ले रहा हूँ अपना  
इस शहर से अपने तई

यह वही शहर है  
जिसके पक्ष-विपक्ष में खड़े

बहस कर रहे हैं हम दोनों  
और जो एक कुशल सूत्रधार-सा  
लाकर हमें स्टेज पर  
और क़ैद कर एक स्त्री-पुरुष युगम को  
अपने स्पॉटलाईट में  
चला गया स्वयं जाने कहाँ  
किन अँधेरो में  
कितने परदों के पीछे ।

### तीन

शहर में  
दिखने को तो वैसे  
कई पुल दिखते हैं  
मगर क्या है  
एक भी पुल ऐसा  
जो जोड़ सके  
मेरी आवारगी को  
तुम्हारी धड़कन से

आओ

एक ऐसा शहर बसाएँ  
जहाँ एक घर से दूसरे घर तक  
एक दिल से दूसरे दिल तक  
पहुँचने के लिए ज़रूरत न पड़े  
किसी कंकरीट या काठ के पुल की  
बल्कि जगह हो इतनी मुहब्बत के लिए  
शहर की हवा में  
कि पहुँच जाए कोई भी संदेश आश्रय का  
चुटकी में अपने आलंबन तक  
सही-सलामत  
लहू-लुहान हुए बग़ैर ।

### धूप

#### एक

धूप में मुरझाता है  
चेहरा

धूप में खिलता है  
बदन

#### दो

धूप बहाती है  
पसीना

धूप को पसंद है  
कमाई का नमक ।

#### तीन

धूप उतरती है  
गेहूँ की बाली में

धूप प्रवहमान है  
हमारे रक्त में ।

## चार

धूप से चलके आई आँखें  
चुँधियाती हैं  
कमरे में घुसते हुए

वक्त लगता है  
खुली दुनिया को  
चारदीवारी तक सिमटने में।

## पाँच

कोमल रहती हैं  
पंखुड़ियाँ फूल की  
धूप में सख्त होते हैं  
उसके काँटे

दुलराती है  
समान भाव से  
धूप हर स्वभाव को।

## स्त्री-द्वैत

बहुत झीना पर्दा है  
दुख और सुख में  
रोती हुई स्त्री जब  
तमाम बेड़ियों में जकड़ी रहकर भी  
यकबयक हँसने लगती है  
शोषक इतिहास के धुँआते किले  
बदले समय की खुली बयार में  
अपनी बेचारगी पर  
अपना सिर धुनते नज़र आते हैं  
मगर तभी  
हँसती हुई स्त्री  
अचानक रोने लगती है ज़ार-ज़ार  
और रुग्र चारदीवारियों के भीतर से  
आता बेखौफ अट्टहास  
स्त्री रुदन को कहीं भीतर तक  
दबा देता है  
अपराजेय भाव से मदमत्त होकर  
दुख और सुख की यह आँख मिचौली  
एक स्त्री के भीतर कहीं दूर तक  
अपनी सुरंग रचती चली आ रही है  
जाने कितनी पीढ़ियों से

बहुत कम अंतर है  
प्रकाश और अंधकार में  
जूड़े कसती हुई स्त्री  
अपनी छाती को उन्नत किए सगर्व-भाव  
सूरज को चुनौती दे सकती है  
तो वहीं फैलाकर केश-राशि  
अपने चेहरे और अपनी ग्रीवा पर  
अंधकार के विभिन्न गह्वरों और रहस्यों से  
अपने तई एक मांसल तिलिस्म भी रच सकती है

एक बारीक रेखा भर का अंतर है  
आशा और निराशा में  
स्त्री नदी बन  
अपने पीछे तरलता छोड़ती चलती है  
या फिर वक्त और परिस्थिति के हाथों  
सूखकर रेत और मिट्टी का सपाट मैदान ठहर  
निर्मम और निरंकुश हाथों की कठपुतली  
बन जाती है

सुई की नोक भर भेद है  
धैर्य और क्रोध में  
ज्ञान की प्रतिमूर्ति सरस्वती  
अपने हाथों में पुस्तक की जगह  
कब खड्ग उठा ले  
और एक देवी का वाहन हंस  
कब दूसरी के वाहन सिंह में  
तब्दील हो जाए  
कुछ कहा नहीं जा सकता

बहुत मामूली भेद है  
निर्माण और विनाश में  
अपनी कोख और अपने रक्त से  
दुनिया का नवनिर्माण करने वाली स्त्री  
अपनी उदासीनता और रुदन से  
एक तपता, निर्जन रेगिस्तान खड़ा कर  
सबकुछ धूल-धूसरित और अभिशापग्रस्त  
भी छोड़ सकती है

कितनी महीन रेखा है  
वात्सल्य और विद्रोह के बीच  
अपने आँचल तले अबोध शिशु को  
एक पूर्ण, सक्षम पुरुष बनाने वाली  
कोई स्त्री जब  
अपनी करने पर उतर आए  
तो अपने आँचल को परचम बना  
और लहराकर उसे  
किसी आततायी दुर्योधन-टोली को  
नष्ट करने का बीड़ा भी उठा सकती है  
और प्रतिशोध की ज्वाला में धधकती हुई  
अपने दुश्मन के रक्त से  
अपना केश-स्नान भी कर सकती है

बहुत-बहुत रूप हैं  
गोचर-अगोचर  
नैतिक-अनैतिक  
अच्छे-बुरे  
हर तरह के  
इस जगत के और

अधिकाधिक भाव हैं हम सबके  
इस जगत में  
स्वयं से स्वयं के लिए  
तो कभी एक-दूजे के लिए

मनुष्यों का जीना और सोचना  
जाने कैसे-कैसे सम-विषम धरातलों पर  
कितने झंझावातों और अंतर्द्वंद्वों में  
अनवरत रूप से प्रवाहमान रहता है  
और जाने यह कैसी समेकित करने वाली  
शक्ति है एक स्त्री की  
कि वह अपने तई  
परस्पर विरोधी दिखते इन भाव-द्वैतों  
को समाहित किए चलती है  
सरलता और अपनी सहजता में।

## अँगीठी बना चेहरा

दरवाजे के आगे  
कुर्सी पर बैठा  
खुले चमकते आकाश को निहारता  
फैलाये पैर, निश्चिंतता से  
पीता तेज धूप को  
जी भर  
आँखें बंद किये  
तुम्हें सोच रहा हूँ मैं

और तुम आ गयी हो  
दुनिया की सुध-बुध भुलाती मेरी चेतना में  
मेरे चेहरे की पेशानी पर  
दपदपाते, चमकते बूँदों की शक्ल में  
जैसे आ जाती है  
कोयले में सूरज की लाली  
या फिर  
अँगीठी की गोद में  
उग आते हैं  
नन्हे-नन्हे  
कई सूरज चमकदार  
लह-लह करते कोयलों के



तुम तपा रही हो  
मेरे चेहरे को  
और मेरा चेहरा  
अँगीठी बन गया है  
जिस पर  
तुम रोटी सेंक रही हो  
मेरे लिए ही,  
तुम्हारे सधे हाथों की  
लकदक करती उँगलियां  
जल जाती हैं  
झन्न से  
छुआती हैं जब  
गर्म किसी कोयले से  
और झटक लेती हो तुम  
तब अपना हाथ  
तुर्शी में एकदम से  
मगर बैठे हुए  
जस का तस  
भूख के पास  
स्वाद की दुनिया रचती

बैठकर  
मेरी पेशानी पर  
चुहचुहा रही हो तुम  
बूँद-बूँद में ढलकर  
और मैंने  
ढीला छोड़ दिया है  
अपने अंग-अंग को

और तुम  
उतर रही हो  
आहिस्ता-आहिस्ता  
पोर-पोर में  
और मैं  
उठना नहीं चाह रहा हूँ  
कुर्सी से  
जो प्रतीत हो रही है  
अब तुम्हारी गोद...  
पृथ्वी का  
सबसे अधिक सुरक्षित  
सबसे अधिक गरम कोना  
मेरे लिए।

## रोटी खाने का हक्र

मैं यहाँ

करमजली राजधानी में बैठा  
सरकार और बच्चों की ड्यूटी बजाता  
चकरघिन्नी बना  
सुबह से शाम तक  
लस्त-पस्त  
कभी याद भी  
कहाँ कर पाता हूँ  
अपने चिर-परिचित परिवेश को  
वहाँ जाने की बात तो खैर  
बहुत दूर की है;  
मसौढ़ी-जहानाबाद की  
किसी बड़ी खबर को  
यहाँ दिल्ली के  
अखबारों में और न्यूज़-चैनलों पर  
छोटी बनती देखता हूँ  
असहाय और निरपेक्ष रहता उनसे

माँ से भी

कम ही होती है बातचीत  
फोन पर  
और जब होती है

तो उसकी कम

और अपनी ज़्यादा हाँकता हूँ

हवाई बातचीत

हवा-हवाई ही ठहरती है

माँ के लिए

डरता हूँ कदाचित्

जाने कौन सा दुखड़ा लेकर

बैठ जाएगी माँ...

गाँव वाले घर के

जहाँ-तहाँ चूते खपड़ैल को

पलटने की बात कर देगी

या फिर

कब के सूख चुके

कुएँ को याद करके

दुःखी हो जाएगी

और नहीं कुछ तो

स्मृतिशेष अपने पति को याद कर

अपने बड़े बेटे से

जी हल्का करना चाहेगी

साठ में सत्तर की दिखती

उस दुखियारी को क्या मालूम कि

उसका बेटा अब मनुष्य ही नहीं रहा

राजधानी में गिरता

तो कभी चढ़ता

साँप-सीढ़ी के खेल का

एक गोटी मात्र रह गया है

मगर माँ मेरी

इस कायापलट से

कदाचित् अनभिज्ञ ही है

(संभव है, अनजानी रहना चाहती हो)

और यह अच्छा ही है कि  
जीते-जी  
हाड़-माँस के अपने बेटे को  
यूँ काट होता न देखे

मगर आज यह हुआ क्योंकि  
कि मैं पूछ बैठा माँ से  
कि इस बरस अपने यहाँ  
गेहूँ की खेती कैसी है...

जाने कैसी विष-बयार  
बह रही थी मेरे पुरखों की ज़मीन पर  
कि माँ ने बहुत ही शांत भाव से  
निरावेग हो कहा  
'नहीं...कहीं कुछ नहीं...'  
जैसे कंठ तक ज़हर पी रखी हो  
और ऐंठ पड़ी उसकी जीभ से  
कुछ बोला न जा रहा हो  
माँ बुदबुदा रही थी कुछ-कुछ  
और मुझे फोन पर यूँ संवादरत  
सही-सलामत ही लकवा  
मार गया हो जैसे...  
कुछ देर के लिए  
माँ-बेटे के बीच  
सेतु बनी वायु-तरंगें थम गईं  
मेरे लिए यह सूचना अविश्वसनीय थी  
मगर हर तरह की अनहोनी को  
पचाते इस महासागर...  
नहीं महानगर के एक  
व्यावहारिक शहरी की तरह

मैंने स्वयं को संयत किया  
कुछ ही पलों में  
और पूछ बैठा माँ से-  
'क्या सिर्फ अपने खेतों में  
गेहूँ नहीं है?'  
'नहीं...नहीं...'  
पूरे गाँव में किसी ने भी  
नहीं बोया गेहूँ इस बार  
अपने गाँव में  
क्योंकि पहले से ही  
पाताल-लोक जाता पानी  
इस बार तो कहर ढा गया  
गाँव के गहरे-से गहरे बोरिंग भी  
फेल हो गए इस बार  
जाने कैसा दुर्दिन है बेटा  
मुई बारिश भी पिछले  
कई सालों से दगा देती  
आ रही है'

यहाँ दिल्ली में  
पैकेट बंद, बाजारू आटे की रोटी  
आज शाम जब पत्नी ने परोसी  
तो जाने क्यों कुछ ज्यादा बेस्वाद और  
पराई लगी  
मेरी आँखें तरल हो आईं  
थाली से उठकर मन  
जाने कितना पीछे चला गया...

क्या तो अपने बचपन में  
होलिका दहन की रात

गेहूँ की हरी-भरी बालियों को  
आधा जलाकर  
उसे चबाते हुए  
उसके कच्चे दूध के रस से  
पूरा मुँह भर-भर हो आता था  
और कहाँ आज का दिन है  
कि पूरे गाँव में  
किसी ने भी नहीं बोया  
बित्ता भर गेहूँ

पत्नी मनाती रही  
लेकिन मैं खाने की मेज़ से  
उठ खड़ा हुआ  
अंदर से कोई आवाज़  
निरंतर दृढ़ होती जा रही थी...  
आज से तुमने  
रोटी खाने का हक  
गाँवा दिया है  
सुना तुमने प्रवासी !

## मैं सड़क हूँ

### एक

तुम मुझे बनाते हो  
और फिर रौंदते हो  
अपने पैरों के जूतों  
अपनी गाड़ी के पहियों  
और अपनी तेज, अंतहीन रफ्तार से

तुम मुझ पर आजीवन भागते हो  
मगर मैं तुम्हें कहीं नहीं पहुँचाती  
और अगर मुझमें ऐसी कोई सामर्थ्य होती  
तो मैं स्वयं किसी मंजिल पर जाकर  
सुस्ता रही होती  
मैं तो किसी नदी की तरह खुशक्रिस्मत भी नहीं  
कि कोई सागर मुझे अपनी गोद में  
जगह दे दे  
क्योंकि मुझे तुमने  
एक इंसान ने बनाया है  
क इंसान ने बनाया है  
मैं आकर्षक और अंतहीन हूँ  
तुम्हारी आकांक्षाओं की प्रतिच्छवि  
जो कभी कहीं जाकर खत्म नहीं होती ।

दो

धूल से सनी-पगी  
मैं कोई कच्ची पगडंडी नहीं हूँ  
जो तुम्हारे नंगे पाँवों के नीचे बिछकर  
उनकी बिवाइयों का हाल जान सकूँ  
और तुम मेरे किनारे  
चारखाने का अपना गमछा बिछाकर  
अपनी सूखी रोटियों का स्वाद  
मुझसे साझा कर सको

ईंट-पत्थर के शरीर पर  
कोलतार का भरपूर लेप लगाई  
मैं एक स्लिम और स्मार्ट सड़क हूँ  
जहाँ अगर तुम पल भर को भी रुके  
तो रौंद दिए जाओगे  
मैं तुम्हें मशीनी रफ्तार से तेज भागना  
सिखला सकती हूँ  
मगर किसी इंसानी असमंजस, आकर्षण  
भटकाव और भुलावे को कोई  
जीवनदान नहीं दे सकती  
ईंट-पत्थर से बनी यह देह  
तुम्हारे नीचे बिछ तो सकती है  
मगर तुम्हें चैन की नींद  
सुला नहीं सकती  
दुनिया भर के शोर-शराबे में  
तुम्हें डुबोकर मार तो सकती है  
मगर किसी मीठी लोरी की कशती पर  
तुम्हें पार नहीं लगा सकती

मैं सड़क हूँ

मेरी कालिमा मेरी सपाटता की  
पहचान है  
तुम्हारे अंदर कोमलता और सदाशयता के  
जितने कच्चे रंग हैं  
मैं उन्हें क्रमशः सोख लेती हूँ  
तुम जिसे अपनी सफलता कहते हो  
और जिसका बखान करते थकते नहीं हो  
दरअसल वह तुम्हारा बेरंग और निष्ठुर होना है ।